प्रथम संस्करण १९५४
द्वितीय संस्करण १९५५
तृतीय संस्करण १९५६

प्रकाशक
कौशाम्बी प्रकाशन
दारागञ्ज, इलाहाबाद



मूल्य, एक रुपये बारह आने

संसार की पुरानी संस्कृतियों का पता हमें उनके पौराणिक साहित्य से चलता है। जिस जाति के जीवन में उसकी पौराणिकता मिट गई, पुराने विश्वास धुँधले पड़ गए, जीवन के परम्परागत मानदण्ड बिखर गये, उस जाति की समूची संस्कृति का अन्त हो गया। इतिहास के किनारों पर छितराये उन संस्कृतियों के ध्वंसावशेष इस बात के प्रमाण हैं। दूसरी ओर लोक जीवन में, साहित्य और कला के नये रूपों में जो जाति अपने पौराणिक आधार को सँवारती चली, युग और कालभेद के अनुसार उसके पुराने मूल से भी रस लेकर अपने नये जीवन का पोषण करती चली, उसकी संस्कृति के विकास का क्रम कभी नहीं टूटा। प्राचीन यूनान, मिश्र और रोम पहली कोटि में आते हैं और भारतवर्ष दूसरी कोटि में। होमर और यूनानी शोकान्तिकाओं के लेखकों की पौराणिक परम्परा का मिटना यूनानी संस्कृति का अन्त बना। यही दशा मिश्र और रोम की भी हुई। इस देश में वाल्मीकि और व्यास की परम्परा का अन्त आजतक नहीं हुआ। संस्कृति के कवि; रामायण, महाभारत और दूसरे पुराणों से अपने काव्य, नाटक, आख्यायिका का विषय लेते रहे; प्राकृत, पालि से पारकर अपभ्रंश काल और आधुनिक प्रान्तीय भाषाओं में वह क्रम अभी तक चल रहा है। चिन्तन और निर्माण की इसी अटूट परम्परा में हम अपनी संस्कृति की धारा अटूट देखते हैं। वाल्मीकि की 'रामायण', तुलसी के 'रामचरितमानस' और राष्ट्रकवि मैथिलीशरण के 'साकेत' का आधार श्री रामचन्द्र के विभूति सम्पन्न चरित्र की पौराणिक कथा है। युग की

प्रवृत्तियों के अनुकूल इन तीनो ग्रन्थों मे आधार की एकता के साथ ही आकार योजना में मौलिक भेद भी है। रामचरित्र का सत्य आदि कवि ने अपने युग के अनुकूल दिया, गोस्वामी तुलसीदास ने अपने युग के अनुकूल और यही कार्य हमारे इस नये जागरण में मैथिलीशरण ने उसी कथा को इस युग के सांचे में ढाल कर किया।' इन कवियो की निसर्गजात प्रतिभा, ज्ञान और बुद्धि की परिधि के अनुरूप इनकी रचनाएं बन पाई। पौराणिकता के जीवित रहने का अर्थ होता है जाति का जीवित रहना। यह बात मै निष्ठा के वेग मे कह रहा हूँ, इसमे किसी को भ्रम न रहे।

इस नाटक चक्रव्यूह की प्रेरणा बस इतनी ही है। भारतीय जीवन दर्शन के मूलभूत सिद्धान्त जो तब भी थे और आज भी है, इस रचना मे चरित्रों के संवाद और व्यापार के कलेवर मे अनायास मेरी कल्पना से उतरते रह है। महाभारत के इस पौराणिक आख्यान को अधिक से अधिक मानवीय और बुद्धि संगत रूप देने का मेरा प्रयत्न रहा है। रामायण और महाभारत अपने सर्वमान्य आधुनिक रूप में आने के पूर्व, युगो तक राजभवनों के सिंहद्वार पर, जातीय उत्सवो में चारणगीतों के रूप में गाये गये, लोक की भावभूमि मे ये युगो तक बढ़ते रह, फूले, फले और अन्त में वाल्मीकि और व्यासदेव के नाम में इनका परिमार्जित और विकसित रूप आया। संसार के सभी महाकाव्यों की भाँति इनमे भी विजेताओं का उत्कर्ष और विजितों का अपकर्ष प्रधान अंग बन गया।

आज का कवि या तो उसी पुरानी लीक पर आँख मूँद कर चले या पौराणिकता के इस रूप पर नया प्रकाश डाले, ऐसा प्रकाश जो हमारी बुद्धि का और हमारी भावनाओं का हो। जिसमें पौराणिक चरित्र अपने शुद्ध मानवीय रूप में हमारे सामने खड़े हों,

जिनके भीतर हमें अपने राग-विराग मिलें। जिन्हें हम ठीक-ठीक वैसे ही जान-पहचान सकें जैसे हम उन लोगों को पहचान लेते हैं, जिनका प्रभाव किसी न किसी रूपमें हमारे जीवन पर पड़ता है। इस नाटक में अतीत के चरित्र अर्जुन और सुयोधन, अभिमन्यु और लक्ष्मण आदि अनासक्त वृत्ति से देखे गये हैं, किसी के प्रति नाटक-कार का निजी लगाव नहीं है, उसकी ओर से न्याय का अवसर सबको समान मिला है और अन्त में उसकी समवेदना के आँसू भी सब के लिए समान हैं। पाण्डव और कौरव दोनों पक्षों को पुण्य और पाप का प्रतीक न मान कर अपनी परम्परा के स्वाभाविक मानव का रूप दिया गया है। अब समय आ गया है जब हम अपनी पौराणिक घटनाओं और उससे सम्बन्धित व्यक्तियों के साथ न्याय करें। इस रूप में हमारा अतीत केवल बुद्धिसंगत नहीं हमारे लिये उपयोगी भी होगा।

चक्रव्यूह के घटना क्रम पर यह नाटक लिखा गया है। जिस घटना में युद्ध की प्रधानता है। केवल युद्ध को आधार बना कर नाटक लिखना नाटक के भारतीय सिद्धान्तों के प्रतिकूल होता। भरत ने रंगमंच पर जिन व्यापारों का निषेध किया है उनमें युद्ध भी है। इस कठिनाई को पार करने के लिये युद्ध का चित्रण अन्य पात्रों के माध्यम से कहीं सूच्य है और कहीं नेपथ्य की आड में। फिर भी वीर और रौद्र रस का परिपाक अभिमन्यु के रणकौशल मे है। लक्ष्मण के साथ उसके समर में करुण रस आरम्भ होकर उस समय व्यापक हो उठता है जब सुयोधन अपने एक मात्र पुत्र लक्ष्मण के निधन के बाद भी अभिमन्यु की प्राणरक्षा में दौड पडता है और अन्त में अभिमन्यु का शीश अपनी गोद में ले कर क्रोध और वैर से छूटकर तन्मय हो जाता है। नाटक के आरम्भ में धर्मराज और

द्रौपदी का अभिमन्यु के प्रति अनुराग, सुभद्रा का पुत्र प्रेम, उत्तरा का पत्नी धर्म और अन्त में पितामह भीष्म की बाणशय्या के निकट के व्यापार नाटक को करुण रस प्रधान कर गये हैं।

संवाद, व्यापार, परिस्थिति और घटनाक्रम जिस अंश तक इस नाटक में स्वाभाविक हो सके है उसी अंश तक इसकी सफलता मानी जायगी, जिसका निर्णय पाठक करेंगे। पौराणिक कथानक के आधार पर मनोवैज्ञानिक नाटक लिखने का यह मेरा दूसरा प्रयास है। इस तल का पहला नाटक 'नारद की वीणा' आठ वर्ष पहले लिखा गया था। 'गरुणध्वज', 'वत्सराज' आदि पिछले अन्य नाटक ऐतिहासिक आधार पर लिखे गये। 'सिन्दूर की होली' से नाटक में गीत देना मैं छोड़ चुका था, इसलिए कि गीत का स्वाभाविक अवसर जब तक नाटक के वातावरण में न बने तब तक गीत देना नाटक की गठन को बिगाड देना है। पौराणिक परम्परा के अनुसार युद्ध क्षेत्र में चारण और बैतालिक गीत वीरों की प्रशस्ति मे बराबर गाये गये हैं। इस नाटक में इस परम्परा का वातावरण बराबर बनता रहा है, इसलिए इसमें परिस्थिति विशेष के रंग में गीत भी दे दिये गये हैं।

अभिमन्यु और लक्ष्मण की मृत्यु में कुरुवंश के नाश का भय पितामह भीष्म को क्यों हुआ? इस विषय मे दो शब्द कहने पडेंगे। द्रौपदी के पाँच पुत्रों की चर्चा महाभारत के युद्धपर्व में और गीता के आरम्भ में मिलती है। इनका जन्म कब और कहाँ हुआ? इसकी सूचना मुझे महाभारत में नहीं मिली। कदाचित् अपराजित अश्वत्थामा के चरित्र को हीन करने के लिए इन पाँच पुत्रों की बात गढ़ी गई। इस विषय का कवि सत्य जो मेरी कल्पना पर उतरा है वह विस्तार के साथ मेरे अधूरे महाकाव्य 'सेनापति कर्ण' मे आ

चुका है। पाँच पुरुषों के एक नारी से अलग-अलग पाँच पुत्र ही हुए, पुत्री एक भी नहीं हुई अथवा यह भी नहीं हुआ कि किसी के दो पुत्र हों और किसी को एक भी नहीं। यह प्रसंग मेरे विश्वास के प्रतिकूल है। इस प्रकार का शुद्ध श्रम विभाजन सम्भव नहीं। पाण्डव कुल में अभिमन्यु और कौरव कुल में लक्ष्मण से ही वंश परम्परा को चलना था। दोनों के निधन से दोनों ही कुल डूब गये। नाटक के अन्त में उत्तरा का गर्भस्थ शिशु दोनों कुलों की रक्षा का आधार बनता है; जिसके लिये भानुमती और सुभद्रा पुत्रवधू उत्तरा के शीश पर हाथ रख कर कुल के भावी मंगल की कामना करती हैं।

उत्तरा के भावी पुत्र से दोनों कुलों को चलना था। नाटक लिखते समय इस विचारने केवल कवि सत्य का रूप लिया पर बाद में श्रीमद्भागवत में इसका साक्ष्य भी मिल गया*।

प्रयाग, वसन्त पंचमी
सम्वत् २०१०

लक्ष्मीनारायण मिश्र

*द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टमिदं मदङ्ग
सन्तान बीजं कुरुपाण्डवानाम्।
जुगोप कुक्षिं गत आत्तचक्रो
मातुश्च मे यः शरणं गतायाः॥
श्रीमद्भागवत १०-१-६

# पात्र-सूची

## पुरुष पात्र

### पाण्डव पक्ष के जन

| | |
|---|---|
| अभिमन्यु | युधिष्ठिर |
| भीमसेन | अर्जुन |
| धृष्टद्युम्न | सात्यकी |
| कृष्ण | सुमित्र |

चरण, चर आदि

### कौरव पक्ष के जन

| | |
|---|---|
| भीष्म | द्रोण |
| सुयोधन | कर्ण |
| अश्वत्थामा | दुःशासन |
| लक्ष्मण | चारण आदि |

## स्त्री पात्र

द्रौपदी : पाण्डव रानी
सुभद्रा : अर्जुन की पत्नी
उत्तरा : अभिमन्यु की पत्नी
भानुमती : सुयोधन की पत्नी

प्रतिहारी आदि

# पहला अंक

(युद्धभूमि में धर्मराज युधिष्ठिर का मन्त्रणा शिविर। गम्भीर विचार और चिन्ता की मुद्रा में युधिष्ठिर दूर क्षितिज की ओर देख रहे हैं। सूर्य पिण्ड दाईं ओर आकाश में ऊँचे चढ़ चुका है। भीमसेन, धृष्टद्युम्न, सात्यकी, नकुल, सहदेव, पक्ष के और कई वीरों के साथ धर्मराज के सामने शस्त्रों पर हाथ धरे बैठे हैं। किसी के हाथ में गदा किसी के धनुष, किसी के खड्ग और किसी के भल्ल आदि अन्य शस्त्र हैं। कोई किसी की ओर सकेत से देख लेता है, किसी की आँखें शिविर के बाहर युद्ध-भूमि की ओर लगी हैं, किसी की धरती की ओर और कोई ऊपर देखने में अचेत हो रहा है। संकट का भाव सबकी आकृति पर रग भरता जा रहा है। शत्रुओं का हर्षनाद और वन्दीगान रह-रह कर सुनाई पड़ता है।)

भीमसेन (गदा हिलाकर और दन्त पंक्तियों में एक बार निचला अधर दबाकर) *मुझसे अब यह नहीं सहा जायेगा तात! शत्रुओं की यह मर्मभेदिनी हँसी, विजय और हर्ष का यह उन्माद सुन रहे हैं आप चारण क्या गा रहे हैं?*

धृष्टद्युम्न *गा रहे हैं पाण्डुपुत्रों की यह कालरात्रि है और कौरवों के भाग्य का सूर्य इस समय ऊँचे सबसे ऊँचे आकाश के मध्य विन्दु पर है।*

सात्यकी हा...हा...हा... (उपहास की हँसी) गुरुदेव अर्जुन को देखते ही विजय का यह मद उतर जायेगा तब वे अधमरे साँप से धरती पर लोटते रहेंगे।

युधिष्ठिर देव की गति है यह... (गहरी साँस खींचते हैं)

भीमसेन देव की गति वीर नहीं मानता तात! पौरुष देव की गति भी बदल देता है।

युधिष्ठिर (अपने ओठ पर उंगली रखकर) अहंकार होगा यह तुम्हारा भद्र! बाल ब्रह्मचारी, लोक विजयी पितामह भीष्म के पौरुष में तब तुम संदेह कर रहे हो। दोपहर को सूर्य-सा जो पौरुष कभी मन्द नहीं हुआ, न रुकी देव की गति उससे भी। वीर का सबसे बड़ा शत्रु उसका अपना अहंकार होता है भीमसेन! यह न भूल जाना!

भीमसेन न मैं धर्मराज हूँ और न धर्म की सूक्ष्म गति का मुझे पता है। इस गदा की परिधि के बाहर मेरे प्राण की भी गति नहीं। जब तक इसकी गति बनी है तात! तभी तक मेरे धर्म और प्राण दोनों की गति बनी है।' पितामह भीष्म ने शस्त्र फेंकने के साथ ही क्या पौरुष भी नहीं फेंक दिया?

युधिष्ठिर (दुख के स्वर में) भीमसेन...

भीमसेन जी समझ रहा हूँ...पितामह के आचरण में शंका कर पाप का भागी बनना है। शिखण्डी जिस वेष में रथ पर बैठा था, वह वेश, वस्त्र, आभूषण और अंग-विन्यास में नारी का था। शीश के नीचे काले नाग-सी लहराती लम्बी वेणी, आँखों में अंजन की रेखा, कण्ठ में चन्द्रहार, श्मश्रु हीन मोहक मुख मण्डल, तरुणी के रूप में भी

उससे अधिक सम्मोहन क्या होगा ? फिर भी प्राण रक्षा से बडा धर्म दूसरा क्या था जिसके लिए पितामह नें घृणा से शस्त्र फेंक कर मुख मोड लिया ?

सात्यकी नारी की ओर न देखने की उनकी प्रतिज्ञा जो थी। प्राण से कहीं अधिक आकर्षण था उनके लिये प्रतिज्ञा का।

भीमसेन तब फिर देवगति का उन्होंने स्वागत किया, हारे नहीं वे उससे...

नकुल बीती बातों में उलझने का अवसर यह नहीं है तात ! संकट की जिस बेला में पाण्डवों की लीक मिट रही है, पितामह के आचरण की चिन्ता न कर हम अपने आचरण की चिन्ता करें। शत्रुओं के हर्ष का समुद्र हमारी कीर्ति की ध्वजा को सदैव के लिए बोर देना चाहता है। हमारे यश रूपी चन्द्रमा का राहु द्रोण का यह चक्रव्यूह बन जायगा, कौन जानता था ?

युधिष्ठिर इस रोग की औषध मुझे नहीं सूझती ! सब ओर अन्धकार.. समुद्र के जल से गहरा, विस्तार में उससे भी अधिक। कोई हाथ पकडकर मुझे मार्ग दिखाये। मेरी अपनी आँखों में कुछ सूझता नहीं। (दोनों हाथों से सिर थाम कर)

भीमसेन (कठोर स्वर में) मेरी गदा से वह मार्ग बनेगा।

युधिष्ठिर फूक से पर्वत उडा देना और जीभ से समुद्र सोख लेना सम्भव हो सकेगा भद्र ! पर गदा से चक्रव्यूह का भेदन न होगा। बिना विवेक के वीरता महासमुद्र की लहरों में डोंगी-सी डूब जाती है।

धृष्टद्युम्न श्रीकृष्ण और अर्जुन को सूचना दी जाय। वे जान लें कि उन्हें संसप्तक युद्ध में दूर भेजकर द्रोणाचार्य ने ऐसे कठिन व्यूह की रचना की है, जिसका चित्र भी हमने नहीं देखा। जिसके भेदन की कला हमने कभी कान से भी न सुनी, आँखों से देखने की बात तो और है।

युधिष्ठिर इस विद्या के बिना जाने या तो इस व्यूह में फँसकर हम प्राण दें अथवा आज के युद्ध में पराजय मानकर अपने शिविरों में पड़े रहें और शत्रुओं के ताने सहें। चक्रपाणि कृष्ण और गाण्डीवधारी अर्जुन के रहते हमारी दशा महासमुद्र में बिना नाविक के पोत-सी हो रही है।

सात्यकी शत्रु पक्ष में इस व्यूह के भेदन की कला कितने वीर जानते हैं?

युधिष्ठिर पितामह भीष्म से रणविद्या का कोई अंग छूटा नहीं था। धनुर्वेद के एकमात्र अधिकारी वीर मण्डली के सूर्य भगवान् परशुराम जिनके गुरु रहे; उन देवव्रत को इस कला का ज्ञान रहा होगा। आचार्य द्रोण ने इस व्यूह की रचना में ही इस विद्या पर अधिकार सिद्ध कर दिया। कृपाचार्य, अश्वत्थामा और कर्ण इस कला के ज्ञाता होंगे, इस अनुमान के प्रमाण मिल जायेंगे।

सात्यकी और अपने पक्ष में? (उत्सुक होकर साँस रोक लेता है)

युधिष्ठिर श्रीकृष्ण, अर्जुन और प्रद्युम्न ..

सात्यकी प्रद्युम्न इस युद्ध से विरत हैं। कुरुभूमि में जिस समय युद्ध के पहले शंख बजे थे बलराम के साथ वे भी तीर्थाटन के लिये चले गये। श्रीकृष्ण और अर्जुन इस यज्ञ

के प्रधान होता होकर भी इस समय दूर है। गुरुदेव जो मुझे यह कला बता दिये होते तो इस अवसर पर काम आती।

चर (प्रवेश कर) जय हो देव!

युधिष्ठिर व्यूह की जो कुछ भी सूचना मिली हो, एक साँस में कह जाओ चर!

चर जिसकी एक-एक बात में साँस रुकने लगती है। यमपुरी से भी भयानक उस व्यूह की सारी बातें एक साँस में कह देना विन्ध्य को जल पर तैराना होगा। जो बात पहले कभी सुनी नहीं, उसे कहने को शब्द कहाँ मिलेंगे? अधूरी सूचना भी उसकी दे सकूँगा; उसके एक या दो अंश की सूचना मुझसे आपको मिल सकेगी.. इसमें विश्वास मुझे नहीं है।

भीमसेन जो कुछ तुमने देखा हो। (उत्सुक मुद्रा)

चर गरुड उस व्यूह में प्रवेश नहीं पावेगा। शत्रु ऐसे असावधान नहीं हैं कि आपका का चर चक्रव्यूह के निकट जाकर फिर लौट पाता। जो सुना-सुनाया जान सका बस उतना ही।

युधिष्ठिर अच्छी बात चर! वही कहो।

चर चक्र के आकार का यह व्यूह सात मण्डल चक्रों में बना है हर मण्डल द्वार का रक्षक शत्रु सेना का कोई प्रधान वीर एक लाख सेना और सहचरों के साथ सुमेरु-सा अडिग भाव से आपकी सेना की बाट जोह रहा है। प्रधान द्वार और मण्डल द्वारों पर चारण विजय और उत्कर्ष के गीत

गा रहे हैं। क्षीर समुद्र से भी अधिक गम्भीर ध्वनि व्यूह से निकलकर दिशाओं में भर रही है।

भीमसेन प्रधान द्वार का रक्षक कौन है चर ?

चर सिन्धुराज जयद्रथ। व्याघ्र चर्म-मण्डित सोने और रत्नों से बना उनका रथ आकाशगामी सूर्य के रथ से होड़ ले रहा है। सेनापति आचार्य द्रोण उनके दायें अपने रथ में वीरासन मारे बैठे हैं। पर सुना यही गया कि इस द्वार के प्रधान रक्षक जयद्रथ हैं द्रोण नहीं।

सात्यकी मण्डल द्वारों के रक्षक कौन हैं ?

चर इस विषय में जितने मुँह उतनी बातें सुनने में आईं। कर्ण और कृपाचार्य के साथ सुयोधन व्यूह के अन्तिम द्वार पर हैं, या कर्ण दूसरे द्वार पर है दोनों बातें सुनी गईं पर सच क्या है कौन जाने ?

युधिष्ठिर साधु चर ! कुछ और सुना ?

चर इस व्यूह में प्रवेश करने वाल प्राण लेकर लौट नहीं सकेगा। जयद्रथ ने प्रतिज्ञा की है कि अकेले अर्जुन को छोड़कर किसी भी दूसरे रथी को वह व्यूह में घुसने न देगा।

सात्यकी अरे ! यह इतना बल जयद्रथ में कहाँ से आगया ?

भीमसेन स्वप्न में देवलोक की कोई अप्सरा उसे इतना बल दे गई होगी !

धृष्टद्युम्न तो अब अप्सराएँ स्वप्न में बल देने लगीं ! अच्छा हो स्वप्न में किसी अप्सरा को बुलाकर तुम भी ऐसा ही बल माँग लो। (मन्द हँसी)

भीमसेन (धीरे से) द्रौपदी स्वप्न में भी किसी अप्सरा को मेरे निकट जो आने दे तब न ! स्वप्न में भी बस वह अकेली आना चाहेगी। बेचारी अप्सराएँ जिसके नाम से ही भाग चलती हैं। कह दो अपनी बहन से कुछ दया दूसरों पर भी करें। (मन्द हसी)

चर ठीक है वीरता का भार परिहास से चलता है। संकट में जिसे हँसी न सुझे वह और चाहे जो हो वीर नहीं होता ! बस एक बात मुझे और कहनी है।

भीमसेन
धृष्टद्युम्न
सात्यकी } हाँ ..हाँ ..कहो चर ! (उत्सुक मुद्रा में सब देखने लगते हैं)

चर पीठ में बाण मारकर जो पितामह गिराये गये ...

युधिष्ठिर हाँ कहो चुप क्यों हो गये ! (साँस रोक कर देखते हैं)

चर इस व्यूह में उसका प्रतिशोध होगा।

भीमसेन किसके साथ... ?

चर जो इसमें प्रवेश करे। यमराज का निमंत्रण जिसे आज मिला हो ! सुयोधन से इसकी प्रतिज्ञा आचार्य द्रोण ने की है।

युधिष्ठिर किस बात की प्रतीज्ञा भद्र ? (उद्वेग की मुद्रा में)

चर आप की सेना का कोई महारथी इस चक्रव्यूह में आज परलोक जायेगा। आपके पक्ष के किसी एक महारथी का अन्त आज द्रोण करेंगे।

भीमसेन गरजने वाला बादल बरसता नहीं है।

युधिष्ठिर और जो कहीं वह बरसने लगे ?

सात्यकी तब प्रलय होगी। प्रलय में मेघ गरजने के साथ बरसते भी हैं।

युधिष्ठिर समर में द्रोणाचार्य प्रलय के किस मेघ से कम हैं? कौन कहेगा इसे? जाओ चर! और जो सूचना तुम्हे मिले... (सब की ओर देखकर) तो अर्जुन का लौट आने की सूचना दी जाय?

भीमसेन कभी नहीं! किरीटी जिस समय आँखों के संकेत में हमें हीन पौरुष मानेगा, मै पृथ्वी में धँस जाना चाहूँगा। अकेले अर्जुन को लड़ना था तो इस सेना की और (चारों ओर हाथ घुमाकर) इन सेनापतियों की क्या आवश्यकता थी। एक बार और लाख बार मै यही कहूगा कि हम द्रोण के इस व्यूह से वैसे ही टक्कर लें जैसे समुद्र की लहरें तटभूमि से टक्कर लेती हैं। व्यूह के सात द्वारो की जगह हमारे शस्त्र सत्तर और सात सौ द्वार खोल देंगे।

युधिष्ठिर सब की यही राय है?

सात्यकी धर्मराज! युद्ध करना है। सुन रहे है नन्द और उपनन्द नाम के दोनों नगाड़े शत्रु बजाने लगे। हाथो में धनुष और शरीर में प्राण रहते हम पराजय मान लें? पितामह भीष्म की बाणशय्या और दोनों पक्ष के इतने विरों की मृत्यु का फल तब क्या होगा? किस तप से किस माया से जयद्रथ आज अजेय बना रहा है हम देख तो लें।

धृष्टद्युम्न लाभ और हानि का लेखा वणिक लेते है पण्य-वीथियों में। शत्रु के बल और कौशल की चिन्ता मन में जहाँ

बैठी, फिर तो वीर की जगह नरक की वह निचली तह होती है जहाँ सूर्य की एक भी किरण नहीं पहुँचती। अर्जुन के न रहने से वह ब्राह्मण आप को पकड़ लेगा ..
(सन्देह की मुद्रा)

युधिष्ठिर शिव ... शिव ... अपने लिये मैं डर रहा हूँ ?

धृष्टद्युम्न उसका काल मैं वहीं खड़ा रहूँगा। द्रोण के वध के लिये मेरा जन्म हुआ। आकाशवाणी झूठी न होगी।

चर शंकर ने जयद्रथ को कभी वर दिया था ?

भीमसेन (व्यंग में) विश्वजयी बनने का भद्र ? हा . हा . हा.. पात्र और अपात्र का विचार भगवान् शंकर भी भूल गये ?

युधिष्ठिर भीमसेन साँस रुक रही है मेरी ..और तुम्हें हँसी आ रही है ?

भीमसेन धर्मभीरु आप हैं न ? जन्म बीत गया मेरा आपकी साँस रुकते देखते। पर कभी रुकी नहीं ! भीष्म का, द्रोण का, कर्ण का आतंक तो आपकी साँस में बराबर बना रहा। अब इस जयद्रथ का भय आपके रक्त का रंग बदल कर पीला कर रहा है। पल भर को भी वह समय कब आया जब आप निर्भय रहे ? धर्म का राजा धरती का राजा नहीं हो सकेगा। ना . ना . हो नहीं सकता यह। आप दिन भर इसी मन्त्रणा शिविर में अपने सेनापतियों के साथ दोनों हाथ बाँधकर मन्त्रणा करें, नींद आने लगे चुपचाप यहीं लेट जाइयेगा।

धृष्टद्युम्न हाँ . हाँ . भीमसेन (ओठ पर उङ्गली रखकर चुप रहने का संकेत करता है)

भीमसेन शत्रुओं का सिंहनाद नहीं सुन रहे हो तुम ? तुम्हारे कान

बहरे हो गये हैं ? भीष्म से महासमुद्र को पारकर हम आज डूब रहे हैं गढे में ? जयद्रथ और भीष्म में वही अन्तर है जो गढे और समुद्र होता है। धर्मराज के प्रति कहे मेरे शब्दों में अनादर के भाव न देखो।
(गदा उठाकर खड़ा होता है। किसी भीषण संकल्प का भाव उसकी आकृति पर छा जाता है। आगे बढ़कर युधिष्ठिर के सामने सिर झुकाकर शिविर द्वार की ओर बढ़ता है)

युधिष्ठिर मुझ अभागे के आशीर्वाद में जो कुछ बल हो तो मैं कहता हूँ तुम्हारी विजय हो। शत्रुओं को जीतकर तुम शत्रुञ्जय बनो। पर इसी तरह कहीं भी जाने के पहले कोई भी काम करने के पहले मेरा आदेश न लेकर ...

भीमसेन (घूमकर) तब तो मरने के पहले भी मुझे आप से आदेश लेना होगा आर्य ! (क्रोध में सर्प-सा सिर हिलाता है)

युधिष्ठिर निश्चय ! जब तक मेरा यह अधिकार तुम मुझसे छीन न लो।

भीमसेन यही तो ! दुर्योधन का सबसे बड़ा बल यही है।

सात्यकी क्या...क्या...बल है उसका भद्र !

भीमसेन वह जानता है कि धर्मराज इस मिट्टी की धरती पर अमर बनकर रहना चाहते हैं। अपने भाइयों के लिये अपने एक-एक जन के लिये उनके भीतर यही कामना है।
(युधिष्ठिर की ओर देखकर) चक्रव्यूह तोडने का आदेश चाहता हूं मैं।

युधिष्ठिर (चौंककर) तुम भी इसकी कला जानते हो ?

भीमसेन नहीं। रथ से रथ और हाथी से हाथी मारने की कला मैं जानता हूं।

(एक साथ सब हँस पड़ते हैं) हाँ...हाँ...इस कला से कोई व्यूह टूट जायेगा। जो लोग इस समय हँस रहे हैं वह भी देख लेंगे कि कला और विद्या की चिन्ता वे करते हैं जिनका विश्वास अपनी बाहों में नहीं होता। राघव समुद्र के इस पार से उस पार तक कैसे जाता है? हाथियों के दल में सिंह कैसे प्रवेश करता है? नागों के बीच में गरुड कैसे झपटता है? किस गुरु से सीखते हैं ये अपने कार्य की कला?

युधिष्ठिर अपनी प्रकृति से...

भीमसेन और मैं...

युधिष्ठिर धनुष, बाण, गदा, परिघ और दूसरे शस्त्र तुम्हारी प्रकृति में नहीं हैं। हाथ, पैर, दाँत अपनी प्रकृति के इन शस्त्रों से लड़ना होता तो बात दूसरी थी।

भीमसेन तब हम आज हार गये। अभी हम जीवित हैं, हमारे हाथों में शस्त्र भी हैं फिर भी हम हार गये।

(अभिमन्यु प्रवेश कर द्वार के निकट रुक जाता है। किशोर वय, मोहक रूप, सिंह-सी निर्भय मुद्रा। कन्धे में धनुष, हाथ में भल्ल कटिबन्ध में खड्ग और पीठ पर तूणीर)

अभिमन्यु ऐं! किस तरह हम हार गये? मझले चचा क्या कह रहे हैं यह? पितामह की आँखों में अश्रु देखकर जान लिया आज कोई अनिष्ट होगा। अनिष्ट की बात यहाँ

भी सुन रहा हूं। युद्ध में मृत्यु का पुण्य भी नहीं मिला हमें और हम हार गये? इस लोक के न मिलने पर वह लोक तो मिला होता। (दायाँ हाथ ऊपर उठा देता है।)

युधिष्ठिर द्रोणाचार्य ने आज चक्रव्यूह में अपनी सेना खड़ी की है। तुम्हारे पिता इस समय संसप्तक युद्ध में पाँच योजन दक्षिण हैं।

अभिमन्यु (साँस रोककर) हाँ तात ! तब ?

युधिष्ठिर चक्रव्यूह-भेदन की कला अर्जुन को छोड़कर केवल दो जन और जानते हैं जो इस संकट में सहायक होते। भगवान् कृष्ण और महात्मा प्रद्युम्न . . .

अभिमन्यु (आगे बढ़कर) आपके प्रताप से आप का यह दास भी वह कला जानता है।

युधिष्ठिर (विस्मय में) ऐं ! वत्स ! तुम जानते हो चक्रव्यूह भेदन की कला ?

अभिमन्यु शत्रु व्यंग कर रहे हैं तात ! सब कुछ बताकर आपकी जिज्ञासा पूरी करने का समय नहीं है। पितामह के यहाँ से आ रहा था व्यूह के द्वार से जयद्रथ ने कहा.. (क्रोध में काँप उठता है। ललाट और आँखों में रक्त का रंग छा जाता है)

भीमसेन तुम्हारा अपमान किया उस उद्धत सिन्धुराज ने. . ?

अभिमन्यु मेरा अपमान उतना घातक न होता। पर वह बात मुँह से निकालने में लज्जा आ रही है मुझे। कह कर आ रहा हूँ उसके वरदान का बल अभी देख लूँगा।

युधिष्ठिर शत्रु के व्यवहार पर क्रोध नहीं करते पुत्र ! वीर का धर्म तो शत्रु के प्रति भी शील है। फिर भी उसने कहा क्या?

अभिमन्यु जाने दें तात! उसने क्या कहा। युद्ध का शंख फूंके। आचार्य द्रोण को पता नहीं था कि उनके व्यूह को मैं उसी तरह उड़ाऊँगा जैसे आँधी सेमर की रुई उडाती है।

युधिष्ठिर इस युद्ध में तुम्हें भेजने से अनर्थ होगा। आज...

अभिमन्यु ना...ना...यह न कहें तात! हिमालय रसातल में चला जायेगा। संसार से वीर का धर्म उठ जायेगा जो मेरे मोह में आप आज शत्रुओं की जीत मान लें। सत्य कहना जो अपराध न हो तो फिर मैं कहता हूँ पितामह की बाण शय्या को देख लेने पर जीवन की कामना कौन करेगा? इच्छा मृत्यु जो थे। भगवान् परशुराम के शस्त्र जिनपर निष्फल रहे, यमराज के निमंत्रण से वे नहीं बचे जब फिर मेरी या किसी दूसरे की मृत्यु में ऐसा क्या होगा कि..

युधिष्ठिर ऐसी अमंगल बात मुँह से नहीं निकालते बेटा।

अभिमन्यु पितामह ने जिस समय मेरे सिर पर हाथ फेरा उनकी आँखों से आँसू चल पडे।

भीमसेन अभिमन्यु! पितामह रो रहे थे? कारण कुछ जान सके तुम.. (साँस रोक लेता है)

अभिमन्यु मैंने पूछा...थोडी देर मौन रहकर वे बोल उठे 'जब तक मैं इस बाण शय्या पर हूँ तुम दोनों का मुँह देखना मेरे भाग्य में बना रहे'।

सात्यकी दोनों कौन?

अभिमन्यु बात यह हुई कि आज भाई लक्ष्मण भी उसी समय पहुँच गये थे। पितामह के दोनों हाथ हम दोनों के सिर

पर थे, उनकी आँखें आधी मुँद गईं और उनसे आँसू की धार बह चली। उनकी यह दशा देखकर हम दोनों की आँखें जब चार हुईं.. हम दोनों काँप रहे थे।

युधिष्ठिर हे भगवान्! फिर क्या हुआ?

अभिमन्यु उनके मुँह से कुछ अस्फुट शब्द निकलते रहे, किसी देवदूत से, पूर्वकाल के किसी ऋषि या पितर से वे कुछ कह रहे हों, जिसे वे देख रहे हों और जो हम दोनों के लिये अदृश्य रहा हो। फिर जैसे चेत में आकर उन्होंने कहा कि आज के युद्ध में अच्छा हो हम दोनों में कोई न लड़े, नहीं तो वे बाणशय्या पर अभी जीवित रहेंगे और कुरुवंश का अन्त हो जायेगा।

युधिष्ठिर पांचाल कुमार! अर्जुन के पास सन्देश भेजो। पितामह की बात अदृष्ट के ललाट की लिपि है।

अभिमन्यु संसप्तकों के एक सहस्र हाथियों और एक लाख सेना को बिना मारे नहीं लौटेंगे वे। वैतालिक ने उनके इस संकल्प का गीत जो गाया आपने नहीं सुना?

युधिष्ठिर सुना तो था पुत्र! पर अब चारा क्या है? चक्रव्यूह का तोड़ने वाला दूसरा कौन है इस पक्ष में?

अभिमन्यु माँ के शिविर में...वे जब जहाँ रही हैं.. उनके शयन कक्ष में भगवान् शंकर के चित्र के साथ चक्रव्यूह का चित्र मैं नित्य देख कर पलंग से उठता रहा हूँ।

युधिष्ठिर तुम्हारी माँ के शयन कक्ष में यह चित्र कैसे गया?

अभिमन्यु मेरे प्रसव की पीडा माँ को अधिक न हो इसलिए पिता ने अपने हाथ चक्रव्यूह का चित्र बनाकर उन्हें दिखाया था।

तब से वह चित्र बराबर उनके शयन कक्ष में, या शिविर में जहाँ कहीं सोईं बराबर लगा रहता है। उसी चित्र के आधार पर पिता ने अभी परसों रात को मुझे व्यूह भेदन की कला का ज्ञान दिया। आप नहीं जानते यहाँ कोई नहीं जानता कि इस व्यूह की कला मैं जानता हूँ ''पर पितामह जानते हैं।

युधिष्ठिर पितामह जानते हैं वत्स ''! किसने कहा उनसे।

अभिमन्यु कल संध्या समय तात से उन्होंने पूछा था कि चक्रव्यूह का रहस्य तो अभी वे किसी दूसरे को नहीं बता सके। यह कला वे मुझे बता चुके हैं यह जान कर उन्हें खेद हुआ था। अदृष्ट की केवल एक लिपि है तात! "जन्म लेने वाले को एक दिन मरना है" इसके आगे अदृष्ट भी कुछ नहीं जानता। इस युद्ध के अन्त में धरती को वीर हीन होना है। पितामह का निश्चित मत है आप भी इसे स्वीकार नहीं करेंगे।

युधिष्ठिर हाय! वत्स! फिर तुम कैसे जाओगे? तुम्हारे न रहने पर मेरे कुल का सूर्य डूब जायेगा।

अभिमन्यु लक्ष्मण के मरने पर चाचा दुर्योधन की वंश परम्परा भी मिट जायगी। पितामह के कहने का यह अर्थ बिजली बन कर दिगन्त में चमक रहा है। इस गृह युद्ध का फल यह धरती कब तक भोगे कौन जाने. जो पैदा हुये है वे...और जो न पैदा हुए है वे भी। युद्ध के लिए जो आप अभी न चल पडे तो सिन्धुराज अपने शंख की विजय ध्वनि में आप की नींद तोडेगा। अभी-अभी कहा उसने मुझे सम्बोधित कर 'धर्मराज को जगा देना।

कह देना रात को मद्य का सेवन कम करें। दो घड़ी दिन चढ़ आया और अभी तक उनकी सेना सो रही है।'

भीमसेन यही तो मैं कह रहा था। जयद्रथ का यह अभिमान...
(पृथ्वी पर पैर पटकता है)

अभिमन्यु क्रोध और अमर्ष का यह अवसर नहीं है। (धृष्टद्युम्न की ओर देखकर) मामा आप समर का शंख फूंकें। सेना को व्यूह की ओर ले चलें।

युधिष्ठिर कृष्ण और अर्जुन के न रहने से मेरी आँखें इस समय अन्धी हैं। कुछ नहीं सूझता मैं क्या करूं?

अभिमन्यु पिता और मामा दोनों का प्रतिनिधि मैं आप से चक्रव्यूह तोड़ने का आदेश माँगता हूँ। मुख्य द्वार से प्रवेश कर व्यूह के शेष छः मण्डलों के छः द्वार पारकर अन्तिम द्वार नाभि मण्डल तक मुझे कोई रोक न सकेगा। सुमेरु हिल जाय, समुद्र सूख जाय, मध्याह्न में ही सूर्य अस्त हो पर व्यूह के नाभिमण्डल तक कोई मुझे रोक न सकेगा। शत्रु चाहे इन्द्र, मरुत, वरुण और अग्नि के अंश से लड़ें फिर भी व्यूह प्रवेश में मुझे बाधा न होगी निकलने की विद्या मुझे नहीं आती। मेरे अनिष्ट का समय तब आयेगा जब मैं लौटना चाहूँगा। मेरे पीछे चाचा भीमसेन, मामा धृष्टद्युम्न या महारथी सात्यकी कोई एक भी जो व्यूह में जा सका तब मुझे निकलने की चिन्ता भी न होगी।

भीमसेन बस बस ..हम तीनों उसी मार्ग से प्रवेश करेंगे,

जिससे तुम आगे बढ़ोगे। काया का साथ जैसे छाया नहीं छोड़ती, तुम्हारी परछाईं बनकर हम तुम्हारे साथ रहेंगे।

सात्यकी यही होगा ·· (गंभीर मुद्रा)

धृष्टद्युम्न साधु भीमसेन! तुमने चिन्ता का पर्वत हमारे सिर से उतार लिया। आयु की एक साँस भी जब तक हमारी शेष रहेगी, प्राण से प्रिय पार्थनन्दन का अनिष्ट कौन कर सकेगा?

युधिष्टिर हाय! यह सब क्या हो रहा है। पितामह की आज्ञा का उल्लंघन करोगे वत्स!

अभिमन्यु धर्म की आज्ञा सबके ऊपर होती है तात! होनी कब कहाँ टली है कि प्राण के लोभ में समर धर्म से मुख मोड़ा जाय? आयु जब पूरी हो जायगी कौन रक्षा करेगा। और जब तक वह पूरी नहीं होती मारनेवाला भी कौन है? उठिये . छोड़िये इस मोह को जो आपके धर्म को चुनौती दे रहा है।

(युधिष्ठिर का हाथ पकड़कर खींचता है। भीम, सात्यकी एक साथ ही शंख फूँकते हैं। युधिष्ठिर अभिमन्यु का सिर सूँघते हैं)

युधिष्टिर जन्म-जन्मान्तरों में जो कुछ पुण्य मेरे बचे हों, अमोघ कवच बन कर तुम्हारी रक्षा करें। आकाश में जब तक सूर्य और चन्द्र रहें, धरती पर जब तक गङ्गा रहें तुम्हारा यश अक्षय रहे।

अभिमन्यु (आनन्द में) आपका आशीर्वाद अमोघ है। तीनों लोक में मेरे समान भाग्यवान आज कौन है जिसे धर्मराज अपने श्रीमुख से इतना लाभ दे रहे हैं। आप लोग चलें.. मैं अपने रथ पर अभी आता हूँ।

(युधिष्ठिर को छोड़कर सब का प्रस्थान )

द्रौपदी (प्रवेश कर) तुम आज युद्ध में नही जाओगे अभिमन्यु !

अभिमन्यु वीर की मृत्यु किसी एक दिन होती है माता ! कायर नित्य सौ बार मरता है। इन्द्रप्रस्थ के सभा भवन में चाचा सुयोधन के अपमान का फल यह युद्ध है। भूल न जाओ तुमने जो कहा था 'अन्धे का पुत्र अन्धा होता है'.. घर आये अतिथि के प्रति ये तुम्हारे शब्द थे। चक्रव्यूह की रचना उसी दिन हो गई माता ! अब चिन्ता करने से क्या होगा ? पितामह की बाण शैय्या भी उसी दिन रची गई थी।

द्रौपदी मेरी जीभ काट लो पुत्र ! पर आज युद्ध में न जाओ। जिस जीभ से वह बात निकली थी उसे काट लो .. हाँ काट लो उसे पर आज के समर में तुम न जाओ।

अभिमन्यु मेरे प्राण का मोह तुम्हे हो रहा है ? (ऊपर आकाश की ओर देखने लगता है)

द्रौपदी पुत्र का मोह प्रकृति का सबसे बड़ा आकर्षण है पुत्र !

अभिमन्यु इसमें तुम्हारा स्वार्थ है परमार्थ नहीं। ऐसा ही था तो तुमने भूमण्डल के उन वीरों को क्यों मरने दिया जो वीरता के मानदण्ड थे, जिनके बल से ही धरा की धीरता थी ? लाख-लाख वीरों के मर जाने पर अब तुम्हें मेरा मोह क्यों हो रहा है ? क्या उनकी माताएँ नहीं थीं ? सगे-सम्बन्धी नहीं थे उनके ? उनकी नारियाँ नहीं थीं; उनके हृदय में प्रेम नहीं था ' या उनकी आँखों में आँसू नहीं थे ?

युधिष्ठिर दैव का दोष है यह सब वत्स ! द्रौपदी का नहीं।

अभिमन्यु तब कह दें इनसे तात ! दैव के विधान में यह बाधक न हो।

द्रौपदी मेरे फूटे भाग्य का दोष है यह। जो बात पापी कौरव कहते वही बात अब अपना पुत्र कह रहा है। (कण्ठ भर आता है।)

अभिमन्यु सत्य की परिभाषा सबके लिए समान है। अपने सत्य से अलग जब शत्रु का सत्य देखा जाता है तभी माता वसुन्धरा पर युद्ध के बादल बरसते हैं। अनीति से अनीति नहीं रुकती। पितामह की मर्यादा के साथ ही कुरुओं की मर्यादा मिट गई। नारी के वेश में शिखण्डी को रथ पर बैठाकर उनके साथ जो छल किया गया... उसके फल भोग का अधिकारी सबसे अधिक मैं हूँ।

युधिष्ठिर कौरवों के पाप भी देखो बेटा !

अभिमन्यु अपने पक्ष के पाप से ही मुझे घृणा हो रही है। उनके पक्ष के पाप देखकर उस भार को और क्या बढ़ाऊँ ? कुल तीन जन यहाँ हैं। यह बात इन्हीं तीन तक सीमित रहे।

युधिष्ठिर तुम्हारे इस विराग के कारण तब पितामह स्वयं हैं।

अभिमन्यु च...च...धरती रसातल चली जायेगी तात ! पितामह के धर्म मे सन्देह न करें। पीठ में बाण मारकर गिरानेवाले के प्रति भी उनके हृदय का स्नेह कम नहीं हुआ। होनहार ऐसी थी कि वे इस गृह युद्ध को न रोक सके। यह युद्ध न होता तो वे अमर रहते। सृष्टि के धर्म के विरुद्ध होता यह, इसीलिए यह युद्ध होकर रहा और उनकी मृत्यु का अवसर आया।

द्रौपदी (भरे कण्ठ से) पुत्रवधू ने रात भयानक स्वप्न देखा है। तुषार दग्ध कमलिनी-सी, भोर के चन्द्रमा-सी, उसकी दशा देखकर छाती फट रही है।

अभिमन्यु (युधिष्ठिर काँपने लगते हैं) सुन चुका हूँ मैं। समझा कर...उसके भीतर का भय निकाल कर मैं गया था पितामह के पास। अपनी मृत्यु या अपने प्रिय की मृत्यु के स्वप्न तो इस युद्ध में अब महारथी देखने लगे हैं। वह बेचारी अबला है वह भी किशोरी और फिर उसके ये दिन ..

युधिष्ठिर कैसे दिन...अभिमन्यु ! तुम कुछ छिपा रहे हो... (उत्सुक होकर देखते हैं)

अभिमन्यु (द्रौपदी को संकेत कर) माता बता देंगी आपको, अपने से सब कुछ नहीं कहा जा सकेगा।

द्रौपदी हम अभागों की नाव तुमसे पार लगी तो अब...

अभिमन्यु मुझे यहाँ से जा लेने दो तब कहो ! चलूं तात ! माँ से आशीर्वाद लूं और पत्नी से विजय का तिलक...

द्रौपदी (हाथ जोड़कर) ना...उसके पास नहीं...उसकी आँखों से गंगा-जमुना बह रही है।

अभिमन्यु इसीलिए मेरा वहाँ जाना और उचित है। उत्तरीय से उसके आँसू पोंछकर, मेरे प्रति उसका जो धर्म है, उसका बोध कराकर...उसके हाथ से ललाट पर तिलक लेकर युद्ध में जाना है मुझे। उसे रोती छोडकर जाने का अर्थ होगा युद्ध में पराजित होना। मेरे जय की मूल शक्ति वही है तुम्हारी पुत्र वधू...

(अभिमन्यु का प्रस्थान। नेपथ्य में युद्ध के बाजों और शंखध्वनि के साथ धनुष की टंकार और प्रतिद्वन्द्वी वीरों की ललकार सुनाई पड़ती है। चारण, वन्दी और बैतालिक वीरों की प्रशस्ति गा रहे हैं।)

युधिष्टर कुल वृद्धि की बात कहना देवी !

द्रौपदी आर्यपुत्र की कुल लक्ष्मी गर्भवती है।

युधिष्टिर तब अभी हमारे पुण्य शेष है देवी ! भगवान करते अभिमन्यु के पुत्र का मुख देखकर कुल के भविष्य से संतुष्ट होता। विराट पुत्री ने स्वप्न क्या देखा ?

द्रौपदी वह न पूछिये। कहने के पहले ही जीभ गिर जाना चाहेगी। विश्वास करें.. हृदय चाहे पत्थर भी होजाय फिर भी वह बात मुँह से न निकलेगी।

युधिष्टिर हूँ ''' तब इसका निवारण होना चाहिये था।

द्रौपदी ज्योतिषी से पूछकर स्वप्न के फल का निर्णय कराकर राजवधू को स्नान और दान कराकर आ रही हूँ। उसके स्वप्न का फल घोर अमंगल है।

युधिष्टिर जो कुछ भोग जीवन भर भोगने पडे उनका अन्त अभी नहीं आया ! कितने पाप कितने जन्मों के अभी शेष हैं। पर अब शंकर का भरोसा है। अभिमन्यु ठीक कह रहा था होनी टलती नहीं। चक्रव्यूह भेदन की कला यह बालक जानता है। इसका पता मुझे नहीं था।

द्रौपदी अभिमन्यु के जन्म के पहले ही आर्यपुत्र ने इस व्यूह का चित्र बहन सुभद्रा को दिखाया था। इसके भेदन की बातें बता रहे थे तभी इसका जन्म हो गया। परसों रात को इसकी कला जब वे बताने लगे, इतनी जल्दी

सीख गया अभिमन्यु कि उन्हें विस्मय हुआ और वे हँसकर कहने लगे।

युधिष्ठिर क्या कहा किरीटी ने ?

द्रौपदी यही कि जैसे माता के गर्भ में ही अभिमन्यु ने सुनकर सब उसी समय सीख लिया। केवल प्रवेश की कला अभी यह जानता है। निकलने वाली विद्या इसे अभी नहीं मिली।

युधिष्ठिर चिन्ता की बात ही है देवी ! पर अभिमन्यु को लाख मनाये मानेगा नहीं। हमारे भाग्य ने अब जो लिखा हो। देखना उसकी रण यात्रा के समय पुत्रवधू रो न पडे। वीर का सबसे बडा असंगल पत्नी का स्वप्न नहीं उसकी आँखों का आँसू होता है।

दृश्य परिवर्तन

(अभिमन्यु के शिविर का अंतरग। वीर वेश में अभिमन्यु खड़ा है। उत्तरा का दाँया हाथ उसके कन्धे पर है और सिर उसकी छाती पर टिका है। अभिमन्यु का एक हाथ उसके सिर पर और दूसरा हाथ उसकी पीठ पर है। शिविर द्वार पर वैतालिक गा रहा है।

गीत

हे बाल अरुण ! हे बाल वीर !
अर्जुन सुत हे ! हे समर वीर !
अरि दल काँपे सुन सिंहनाद,
जब फूँको शंख धरा डोले ॥
जय हे अजेय ! जय हे अजेय !

अभिमन्यु प्रिये ! (स्नेह के स्वर में)

उत्तरा (भरे कण्ठ से) हृदय को वज्र बना रही हूँ मैं ..

अभिमन्यु हर्ष और आनन्द में जो तुमने मुझे विदा नहीं किया... भय और शोक में डूबी जो तुम्हारी आकृति बनी रही तो किस बल से, हृदय की किस निष्ठा और कर्त्तव्य के किस तेज से मैं शत्रुओं के सामने टिकूँगा ? तुम्हारे दुःख की छाया मेरे हृदय को सब ओर से घेर कर, रोम-

रोम में विष-सी फैलकर, मेरे धनुष की गति को क्या न घेर लेगी ? किस वीर रमणी ने कब पति के धर्म में बाधा दी है प्रिये ! यह क्या कर रही हो तुम ?

उत्तरा स्वप्न भर सुन लो नाथ ! फिर चाहे जो करो । इस लोक मे तुम्हारे चरणों की दासी उस...

अभिमन्यु उस लोक में भी मेरी संगिनी रहेगी । उसके भाग्य मे ईर्ष्या देवबालाएँ करेंगी । वीर वनिता की महिमा वीर से कहीं अधिक बढ़कर है । मेरे विजय की मूल शक्ति बनना है तुम्हें फिर भय कैसे ?(उसे दोनों हाथों में बाँधकर) विजय तिलक और आरती से भाग्यवान् करो मुझे ।

उत्तरा स्वप्न भर सुन लो प्रभु !

अभिमन्यु हा...हा...हा...हा...स्वप्न की बात कहकर...अमंगल का भाव न भरो मेरे भीतर । युद्ध के लिए मैं अब प्रतिश्रुत हूँ इतनी दूर बढ़ आया हूँ अब जहाँ से पीछे हटना सम्भव नहीं है । सुन नहीं रही हो इस शिविर के द्वार पर वन्दी तुम्हारे सेवक की प्रशस्ति गा रहे हैं ! (उसका हाथ अपनी दाई बाँह पर टिकाकर) रोमांच हो रहा है मुझे...इस गीत के एक-एक शब्द पर । मन और देह की जो गति तुम्हें अंक में भर लेने से होती है वही गति युद्ध के इस आवाहन में भी है । वही सुख, वही रस और वही आनन्द मिल रहा है मुझे इस समय ।

उत्तरा (कदली-पत्र सी काँपकर) तब मुझे भी अपने रथ पर ले चलो ! कैकेयी दशरथ के साथ युद्ध में गई थी ।

अभिमन्यु वह युग चला गया। वीरों के रथ पर अब देवियाँ नहीं बैठतीं युद्ध में। रानी कैकेयी गर्भवती न थीं तब। (हँसकर) मेरे भावी पुत्र की माता ! अपने उदर में मेरे तेज की रक्षा करो ! पति के प्रेम का फल पुत्र होता है। इस देश की देवियों के इस सनातन धर्म से मुख न मोड़ो। हाँ, अब हँस दो। ऐसी हँसी प्रिये ! जो मुझे अमर बना दे। जिसके प्रकाश में भाग्य का कोना-कोना चमक उठे। (उसके कण्ठ पर उंगलियाँ ऐसे घुमाता है जैसे वीणा के दण्ड पर फेर रहा हो।)

उत्तरा (उसका हाथ पकड़ती हुई) गुदगुदी उपजाकर हँसा रहे हो मुझे लो हँस दिया। (उसके दाँत चमक उठते हैं पर हँसी की ध्वनि नहीं निकलती।)

अभिमन्यु अभी नहीं हँसी तुम ..

उत्तरा लो फिर किस तरह...कोई सुनेगा तो इस समय क्या सोचेगा ? यह अभागिनी हँस रही है ऐसे संकट में। इसका हृदय पत्थर से, लोहे से, वज्र से भी कठोर है। पिछली पहर रात से अब तक के आँसू झूठे थे तब !

अभिमन्यु झूठे थे प्रिये ! मैं निकट जो नहीं था। अपने धर्म में, पिता के प्रताप में, मामा श्रीकृष्ण के विजय वैभव में, जो तुम्हारा विश्वास हो, धर्मराज की निष्ठा में, चाचा भीमसेन की गदा में और अपने इस सेवक की बाहों में जो तुम्हें सन्देह न हो तो दूर फेंको मन की इस हीनता को। हँसो ऐसी हँसी जिसका रंग मेरे शरीर और शस्त्रों

पर चढ़कर शत्रुओं के लिए असह्य हो। कोई शत्रु साहस से मेरी ओर देख भी न सके। जो न सम्भव हो मेरे शस्त्रों से वह तुम अपनी हँसी से कर डालो।

उत्तरा  हाय नाथ! तब मैं मर क्यों न गई। (गहरी साँस)

अभिमन्यु  मेरी प्रिया और मेरे पुत्र की माता बनने का अवसर तब तुम्हें नहीं मिलता। तुम्हारे आसन पर यहाँ दूसरी होती।

उत्तरा  (क्रोध में भवें टेढी कर) कौन होती वह?

अभिमन्यु  (मन्द हँसी, मर कर तुम जिसे यह अवसर देती!

उत्तरा  जिस आसन के लिए केवल मेरा जन्म हुआ...कौन है ऐसी दूसरी जो उसकी ओर देख भी लेती! रम्भा, तिलोत्तमा, उर्वशी, शची की भी आँख फोड़ देती मैं तब...

अभिमन्यु  ओ! हो! और स्वप्न के भय में रोने भी लगती!

उत्तरा  कहाँ रो रही हूँ भला...

अभिमन्यु  तब फिर हँसो ..

(अभिमन्यु के मुख की ओर एकटक देखती हुई हँस पडती है। )

अभिमन्यु  अब ठीक। सिंह की प्रिया को कब कहाँ भय होता है यही तो नहीं सोच सका मैं? जब वह स्वप्न देखा, आ जाती मेरे शिविर में मैं तभी हँसा दिये होता तुम्हें! जगत के सारे संकट हँसी की एक लहर में बह जाते।

सुभद्रा (प्रवेशकर) पत्नी के प्रति भी वीर का कुछ धर्म होता है पुत्र !

उत्तरा ना ..ना ..अब कुछ न कहो माँ ! आर्यपुत्र युद्ध में जायेंगे।

सुभद्रा क्या. .क्या कह रही हो बेटी !

उत्तरा स्वप्न का भय मुझे तभी तक रहा जब तक ये निकट न आये। अब मुझे कोई भय नहीं है।

सुभद्रा तुमने क्या जादू कर दिया इस पर पुत्र ! पिछले पहर रात से अब तक यह क्या रही और अब क्या हो गई !

अभिमन्यु प्रिया को मेरे पौरुष और विक्रम में विश्वास है माता ! तुम्हारे पुण्य में और पिता के प्रताप में। गाण्डीव पर जब तक प्रत्यञ्चा है मेरा अनिष्ट करते यमराज भी डरेगा।

सुभद्रा चक्रव्यूह में प्रवेश करने की बात तुम जानते हो पुत्र ! उसमें से निकलने की कला तुम्हें नहीं आती ! प्रवेश की बात जब तक तुम्हारे तात मुझे सुनाते रहे तुम्हारा जन्म हो गया !

अभिमन्यु हाँ माँ ! परसों रात को वही चित्र दिखाकर वे मुझे प्रवेश का रहस्य फिर बताते रहे !

सुभद्रा निकलने का भी ..

अभिमन्यु नहीं माँ धनुष की डोरी में प्राण बाँधकर झूठ नहीं बोलूंगा सो भी तुमसे ..अपनी दयामयी जननी से। निकलने की कला मैं अब तक नहीं जानता !

सुभद्रा . नहीं चाहिये मुझे यह राज्य। राज्य के मोह में धर्मराज पुत्र को भी पाँसे पर रखने चले हैं नहीं होने दूंगी मैं।

द्रौपदी (प्रवेशकर) न रोको बहन! शत्रु जान गये चक्रव्यूह तोड़ने तुम्हारा पुत्र आ रहा है। मझले आर्यपुत्र, सात्यकी और भाई धृष्टद्युम्न छाया बनकर पुत्र के साथ रहेंगे।

सुभद्रा और तुम यह सब मान कर यहाँ आ रही हो! माता का हृदय तो ऐसा नहीं होता।

द्रौपदी विजयी पुत्र की कामना कौन माता नहीं करती बहन! कह क्या रही हो तुम? हमारे पक्ष में जो भार किसी से न चला उसे तुम्हारा पुत्र उठा रहा है यह सुनकर शत्रु दाँतों तले उंगली दबा रहे है। द्रोणाचार्य की मति मारी गई है और सूत पुत्र कर्ण चिन्ता के समुद्र में डूब रहा है।

सुभद्रा और जो कहीं (हाथों मे सिर थाम कर भूमि पर बैठ जाती है)

अभिमन्यु हा..हा..हा.. वीर का अनिष्ट कभी नहीं होता माता! पराजय का भय जिस हृदय में कभी आता नहीं उसका अनिष्ट? वीर गति को हार नहीं कहते। सूर्य मण्डल भेदकर अक्षय स्वर्ग का भोग धरती के भोगों के ऊपर बराबर रहा है। उठो आशीर्वाद दो मुझे तुम्हारा पुण्य मेरा कवच बने। (सुभद्रा को दोनों हाथों से उठाता है।)

सुभद्रा तो तुम नहीं मानोगे। (कण्ठ भर आता है)

अभिमन्यु मेरी इस सोलह वर्ष की आयु का, इस शरीर का, यौवन और विक्रम का सबसे बडा धर्म इस समय क्या है ? जिस ओर मेरा रथ चलेगा वैरियों के बीच में राजपथ बनेगा। माँ ! राजपथ ..

सुभद्रा तो फिर यही होनी है ।

उत्तरा और जिस पर कभी किसी का वश न चला माँ...! विधि की रेख कब किससे मिटी ?

सुभद्रा तब तुम्हारे रूप और प्रेम का आकर्षण मिट गया वह !

उत्तरा पति के धर्म में बाधा देने से वह गति होगी मेरी । मेरे रूप और प्रेम की ईर्ष्या इस समय देव बालाऐं करेंगी । सोचेंगी वे उनका जन्म इस धरती पर होता और पति के धर्म की मूल शक्ति वे बन पातीं । (अभिमन्यु को ओर एकटक देखने लगती है)

अभिमन्यु सच कह रही हो प्रिये ! तुम्हारे रूप के आग्रह में आज वह करूँगा जिसकी कहानी तब तक चलेगी...

उत्तरा हूँ . कब तक ?

अभिमन्यु जब तक यह धरती रहेगी...आकाश रहेगा...आकाश में सूर्य देव रहेंगे और धरती पर रहेगा वीर का धर्म ।

उत्तरा बस अब कुछ नहीं नाथ ! तुम्हारे यशः शरीर की दासी मैं तब भी रहूँगी । मृत्यु के मिटाये मेरा नाम तब न मिटेगा ।

सुभद्रा (द्रौपदी से) बहन क्या हो गया है इसे । (विस्मय की मुद्रा)

द्रौपदी (उत्तरा को छाती से लगाकर) पति के धर्म गौरव का

बोध ! हमारी सेना के सबसे बड़े वीर की पत्नी बनने का भाग्य...यह भाग्य हम दोनों में आज किसी का नहीं है !

अभिमन्यु  हैं.. हैं.. क्या कहती हो माँ.. ! तात की तुलना में मुझे खड़ा कर रही हो ? सूर्य और नक्षत्र का अन्तर न भूल जाओ। युद्ध में शंकर को तुष्ट करने वाले गाण्डीव धारी लोक विजयी परन्तप के कानों मे जब यह बात पडेगी.. ।

द्रौपदी  वे तुम्हें हृदय से लगाकर सिर सूँघकर कहेंगे 'पुत्र तुम मुझसे अधिक वीर हो !' कौन पिता अपने से अधिक उत्कर्ष पुत्र का नहीं चाहता ? आयु में, बल में, विक्रम और यश मे पिता से आगे निकल जाय पुत्र ., यह कामना पिता के हृदय को उसी समय रंग देती है जब वह पहले पहल नवजात पुत्र का मुंह देखता है। अपने से अधिक मोह इसीलिए अपनी परम्परा का होता है और इसीलिए देवो की परम्परा नही है और वे अमर भी है।

अभिमन्यु  रोमांच हो आया मुझे माँ ! तुम्हारी इन बातो से... यह बात मुझे पहले क्यों न सूझी ?

सुभद्रा  महादेव की दया से जिस दिन तुम पुत्र का मुँह देख लोगे यह बात तुम्हे भी सूझ जायेगी। (उत्तरा मुस्करा कर मुँह फेर लेती है। )

द्रौपदी  नारी के सबसे बडे भाग्य में लाज नहीं करते बेटी... अरे ! नही .. नही .. भूल रही हूँ मैं, नारी की लाज का सबसे बडा अवसर यही है जब कि उसके जीवन का सबसे मोहक फल पुत्र मिलनेवाला हो।

अभिमन्यु यह अवसर पिता के लजाने का होता है प्रिया क्यों लजा रही है भला ?

सुभद्रा तुम बड़े नटखट हो ! मारे लाज के पानी-पानी हो रही है मेरी बेटी !

उत्तरा हृदय के और सभी भाव न जाने कहाँ लोप हो गये हैं माँ ! आर्यपुत्र अपने पुत्र का मुँह देखें आप लोग इस समय यही आशीर्वाद दें। कुलदेव सहायक हों। तब तक मैं तिलक और आरती की सामग्री ले आऊँ।

द्रौपदी अरे प्रतिहारी !

प्रतिहारी आई महादेवी ! (प्रतिहारी का प्रवेश)

उत्तरा यह कार्य आज मुझे करना है। अपने हाथों चन्दन और कस्तूरी घिसना है।

द्रौपदी तिलक तुम्हीं दोगी। यह अधिकार धर्म से केवल तुम्हारा है। कादम्बिनी सामग्री ले आये।

उत्तरा सब कुछ मैं ही करूँ। मेरी हथेलियों का रंग आर्यपुत्र के ललाट पर चन्दन के लेप में मिल जाय ! (कादम्बिनी की ओर देखकर) चलो तुम मेरे साथ। जल, तिलक पात्र और सब जुटा दो !

कादम्बिनी जैसी आज्ञा देवी !

(उत्तरा और कादम्बिनी का प्रस्थान। दूर पर युद्ध की ध्वनि भयानक हो उठती है। बन्दी वीरों की प्रशस्ति गा रहे हैं। शिविरद्वार पर वैतालिक ओजस्वी स्वर मे गा उठता है।)

हिले धरा, गगन हिले, हिले विपक्ष वाहिनी,
अजेय पार्थ पुत्र है! दिगन्त गूँज से हिले।
तिमिर घटा विपक्ष की मिटे दिनेश से चलो,
चलो अजेय वीर हे! चलो समर सुधीर हे!
पिनाकपाणि! तुम चलो कि पाशपणि! तुम चलो!!

अभिमन्यु साधु भद्र! साधु!

बैतालिक (नेपथ्य में) यह दास आज कृतार्थ है विजयी!

अभिमन्यु युद्ध के पहले ही बैतालिक!

बैतालिक (नेपथ्य में) हाँ सौम्य! विजय तुम्हारे पीछे चलेगी!

अभिमन्यु सुमित्र से कहो रथ ले आये।

बैतालिक जो आज्ञा देव!

द्रौपदी इस गीत से रोमांच मुझे हो आया। वीर की क्या दशा होगी? अरे तुम्हारे रोम खड़े हो गये हैं पुत्र!

अभिमन्यु रण के आवाहन में प्रिया के आवाहन का रस मिलता है माता! सच तो यह है कि इस रस की तुलना किसी दूसरे रस से हो नहीं सकती! भीतर का रस जितना बाहर हो सका..तुम वही देख रही हो..पर जितना भीतर है ..एक-एक साँस में रम रहा है.. उसे तुम न जानोगी।

द्रौपदी अरे! तुम्हारी आकृति पर यह सब क्या हो रहा है!

अभिमन्यु (हँसकर) क्या देख रही हो?

द्रौपदी कुछ ऐसा जो शब्दों में न उतरेगा। दिव्य लोक के वे भाव जो जाने देखे न गये।

अभिमन्यु रुद्रनृत्य.. प्रलय के ठीक पूर्व शंकर जो नृत्य करते हैं और...

सुभद्रा (भय में) और क्या ..

अभिमन्यु यम नृत्य .

सुभद्रा यह क्या होता है पुत्रक ! (देह काँप रही है)

अभिमन्यु सब कुछ कह देने पर तुम भय से अचेत हो उठोगी माँ! मेरे मुख पर इन नृत्यों के पूर्व भाव हैं, जिनका दर्शन केवल समर भूमि में होता है। बैतालिक के गीत से ये भाव उमड पडे। अच्छा हुआ जो प्रिया ने इन भावों को न देखा।

द्रौपदी (भय में) नहीं तो क्या होता ?

अभिमन्यु माता को सारे अधिकार मिले हैं। धरती सब कुछ देखती है ठीक उसी तरह माता भी।

सुभद्रा और पत्नी ?

अभिमन्यु पत्नी पुरुष के संहारक भाव नहीं देख सकती। नहीं तो फिर सृष्टि का धर्म मिट जायेगा। सृजन की गति रुक जायेगी ! इस विषय की अब एक बात नहीं।

सुभद्रा तुम्हें जन्म देकर भी अभी मैं इतना नहीं जानती !

अभिमन्यु कह तो दिया तुम वह सब जानती हो जो यह धरती जानती है। (हँस पड़ता है)

द्रौपदी तुम्हारे पीछे धृष्टद्युम्न, सात्यकी और मझले आर्यपुत्र रहेंगे बेटा !

अभिमन्यु न भी रहें तो क्या? आकाश मे सूर्य के साथ कौन रहता है? अपने बल का बखान माता-पिता के सामने करना अधर्म कहते है। यह अवसर तुम्हारे उत्सव मनाने का है। तुम्हारा पुत्र तुम्हारे पुण्य से विजय पायेगा अपने बल स नहीं। शंका आर संदेह से तुम मुझे निर्बल करोगी। तुम्हारी यह दशा जो कहीं तुम्हारा पुत्र-वधू देख लेगी तो क्या होगा? सम्हलो जल्दी नहीं तो तिलक पात्र उसके हाथ से धरती पर गिरकर अमंगल का कारण बनेगा।

(स्वर्ण पात्र में तिलक और आरती लेकर उत्तरा का प्रवेश)

उत्तरा (द्रौपदी के निकट रुक कर) हाँ लो माँ ..

द्रौपदी यह भाग्य तुम्हारा है बेटी! तिलक आरती करो। हम दोनों इष्टदेव का ध्यान करें।

(उत्तरा तिलक पात्र बाये हाथ में लेकर दाये हाथ की अनामिका से अभिमन्यु के ललाट पर तिलक लगाती है। फिर आरती पात्र उठाकर उसके सिर के चारों ओर पाँच बार घुमाती है। अभिमन्यु सिर झुकाकर भाव विभोर मुद्रा में खड़ा है। द्रौपदी सुभद्रा दोनो हाथ जोड़े ध्यान मग्न हैं। उत्तरा तिलक पात्र नीचे रखकर बाहें अभिमन्यु के कण्ठ में डाल देती है।)

उत्तरा इस वन्धन में जन्म-जन्म बँधना है आर्यपुत्र!

अभिमन्यु हाँ.. प्रिये! दोनों लोक बँधे है मेरे इस बन्धन मे. .

उत्तरा धन्य हुई यह दासी नाथ! (अपने अंचल से अभिमन्यु के मुख का स्वेद पोंछने लगती है)

सुभद्रा वैसी ही बनी रहो बेटी! तुम दोनो को जी भर देख लूं। आँखों का फल ले लूं। भगवान् सौ आँख दिये होते!

द्रौपदी (हँसकर) यही सुख तब भी मिलता बहन! हमारे लिए इसके आगे सुख की कोई दूसरी सीमा नहीं है। दो आँखें . पुत्र और पुत्रवधू दोनों हमारी दोनो आँखें हैं। सौ आँखों मे यह सुख नहीं मिलता।

अभिमन्यु रथ आ गया। तो अब...

उत्तरा दासी हर्ष से प्रभु को विदा कर रही है। (साँस में वेग भर-जाता है।)

अभिमन्यु सुमित्र!

सुमित्र (प्रवेश कर) आज्ञा देव!

अभिमन्यु घोडों को उचित पोषण दे दिया भद्र! घृत, मधु आज के युद्ध में एक साथ कितने रथियों की टक्कर होगी।

सुमित्र घोडे आश्वस्त हैं

अभिमन्यु शस्त्र सभी रख लिये?

सुमित्र महारथी के रथ पर जितने शस्त्रों का विधान है।

अभिमन्यु फिर चलो मैं अभी आया।

(सुमित्र का प्रस्थान)

द्रौपदी हम दोनो शिविर द्वार तक चलें। (सुभद्रा को संकेत करती है।)

उत्तरा मैं भी साथ..

द्रौपदी पति के साथ बेटी ! भवानी जैसे शंकर को विदा देती है ..समझी !
(द्रौपदी और सुभद्रा का प्रस्थान)

उत्तरा सोलह वर्ष की आयु में...

अभिमन्यु (उस बाहों में बांधकर) हाँ तब...

उत्तरा हम दोनों सोलहवें वर्ष में है...

अभिमन्यु हाँ हाँ ..तब...

उत्तरा जो न होना था ..

अभिमन्यु खुल कर कहो प्रिये !

उत्तरा पर अब क्या ?

अभिमन्यु क्या बात है । इस समय दुराव कर रही हो !

उत्तरा पति पत्नी दोनों की आयु जब सोलह वर्षों की हो...
(नीचे देखने लगती है)

अभिमन्यु लो फिर चुप हो गई.. (उसके सिर पर हाथ फेरते हुए)

उत्तरा दोनों के सोलहवें वर्ष की सन्तान अशुभ होती है ।

अभिमन्यु क्या क्या तो हम दोनों की सन्तान हमारे लिए अशुभ होगी ? अच्छा ..इस शुभ सन्देश ने मुझे अमर कर दिया । मैं तो जानता ही नही था ।

उत्तरा लोग कहते है यही । आगे की बात भगवान् जाने ।

अभिमन्यु जो बीत गया उसकी चिन्ता नही करते । भूल जाओ मुझे . भूल जाओ अपने उदर के उस पुत्र को । हम दोनो मे बडा इस समय तुम्हारा धर्म है । वीर पत्नी का

आचरण करो प्रिये ! इस दशा मे छोड कर तुम्हें नही जाऊँगा मैं युद्ध में ।

उत्तरा    कुछ नहीं.. देखो मै हँस रही हूँ (मन्द हँसी)

अभिमन्यु  अपने प्रति तुम्हारे स्नेह की शपथ दे रहा हूँ मै .

उत्तरा    अब किस लिये ? मैं हर्ष से विदा कर रही हूँ . (भय के स्वर में)

अभिमन्यु  जो कहीं दैव वाम हुआ तो तुम घुल-घुल कर मरोगी नही ..अपने पुत्र मे मेरा अंश देखकर तुम अपने अभाव की पूर्ति करोगी । स्वीकार करलो यह तव मैं रण की निर्भय यात्रा करूँ । बोलो ! अपने पुत्र में मैं अब अमर रहूँगा ।

उत्तरा    (उसकी ओर एकटक देखकर) स्वीकार करती हूँ मै. प्रभु का यह वचन भी मुझसे न टूटे.. भगवान बल दे मैं इसी आदेश को अपना सम्बल बनाऊँ ।

अभिमन्यु  अब (अपनी छाती पर हाथ रखकर) इस हृदय का भार उतर गया । तुम्हारी निष्ठा से शत्रुओं को हरा कर मैं फिर तुम्हारी सेवा में आऊँगा ।

उत्तरा    यही हो नाथ ! दासी एक आसन पर बैठकर शंकर भगवान से यही याचना करेगी । बस अब तो प्रसन्न हो ।

अभिमन्यु  कितने जन्मों के पुण्य से तुम्हे पाया नहीं जानता । तुम्हारे सेवक का अनिष्ट जिस क्षण होगा यह धरती रसातल को चली जायेगी ।

उत्तरा    हर जन्म में मैं साथ रही हू मै जानती हू यह । आगे

भी साथ रहूंगी। जितने दिन पुत्र को इस देह बिना न चलेगा बस उतने ही दिन मेरा धरती से नाता रहेगा।

अभिमन्यु और आगे?

उत्तरा आगे के लिए छूट.. (आँचल पसार कर) इतनी भीख देते जाना!

अभिमन्यु ठीक है दे रहा हूं यह भीख मैं। प्रिया को सब ओर से सुरक्षित रखना मेरा धर्म है इस ओर से भी।

उत्तरा हाँ जिससे अगले जन्म में भी मुझे ये चरण मिलें।

अभिमन्यु उस जन्म में मैं पच्चीस का रहूँगा और तब तुम सोलह की रहोगी क्यों?

उत्तरा (मन्द हँसी) हाँ तब यह भूल न होगी जो सोलह में हो गई (दोनों हँस पड़ते हैं)

अभिमन्यु आओ अब चलें। रथ पर से तुम्हारा मुख देखकर यात्रा करूँ।

उत्तरा शिविर द्वार पर खड़ी रहूंगी मै

(उत्तरा शिविर द्वार पर खडी रहती है। अभिमन्यु उसका सिर ललाट से छूकर निकल जाता है। युद्ध के बाजों की ध्वनि वैतालिक का गीत और शख की ध्वनि सुनाई पड़ती है। फिर रथ के चलने की ध्वनि होती है। उत्तरा मूर्ति की भाँति निश्चल खड़ी रहती है। उसके दायें हाथ का स्वर्ण वलय धरती पर गिर पड़ता है।)

सुभद्रा (प्रवेशकर) हे भगवान्! (उत्तरा का कन्धा हिलाकर) बेटी!

उत्तरा (जैसे चेत में आकर) हाँ माँ ..

सुभद्रा क्या किया तुमने यह... (झुककर वलय उठाती है)

उत्तरा हाँ ..क्या ? (भय की मुद्रा)

सुभद्रा तुम्हारे हाथ का यह वलय कैसे गिरा ?

उत्तरा (वलय की ओर देखकर दायें हाथ की कलाई पकड़ लेती है)

सुभद्रा यहाँ आना बहन ! फूटे भाग्य को क्या करूँ ?

द्रौपदी (प्रवेशकर) हाँ ..क्या कहने लगी ?

सुभद्रा तुम्हारी पुत्र वधू का वलय यहाँ धरती पर गिरा था।

द्रौपदी (हाथ में वलय लेकर) क्यों पगली यह क्या किया ?

उत्तरा मैं कुछ नहीं जानती माँ ! कैसे गिरा यह किस तरह ?

द्रौपदी तुम्हें पता नहीं बेटी !

उत्तरा हाय ! माता ! स्वामी को रण में भेजकर मैं झूठ बोलूँगी ?

द्रौपदी तब यह अमंगल की सूचना है। चलो शिव की पूजा करो पुत्री ! वही रक्षक हैं।

उत्तरा समर में अमंगल कभी नहीं होता माँ...

द्रौपदी हाय ! इसे उन्माद हो रहा है।

उत्तरा अभी-अभी कह गये वे। वीरगति का जो मोहक चित्र वे खींच गये मेरे हृदय पर.. अक्षय स्वर्ग में अक्षय यौवन... जहाँ न जरा है न मरण...वसन्त कभी बीतता ही नहीं.. अनुराग के रंग में जहाँ दिशाएँ डूबी हैं।

द्रौपदी (उसके मुँह पर हाथ रखकर) चुप रहो। सम्हालो बहन इसे मूर्छा आ गई।

(द्रौपदी उसे अंक में लिये बैठ जाती है। सुभद्रा अपने आँचल से वायु करती है)

उत्तरा (तन्द्रा में) यौवन.. वसन्त ..

सुभद्रा हाय ? वधू...

उत्तरा ऐं क्या कह रही हो माता ! उत्सव मनाने को कह गये वे और तुम हाय कर रही हो ?

सुभद्रा देखो बहन कैसे देख रही है यह...

उत्तरा अक्षय यौवन और वसन्त की कामना कर रही हूँ मैं। पंख लग गये है मुझे उड़कर जाने भर की देर है। पुत्र को जब इस देह से काम न रहेगा चली जाऊँगी मैं उड़कर वहाँ।

द्रौपदी पुत्र तुम्हें इसका अधिकार दे गया। यही कह रही हो।

उत्तरा हाँ। जी होता है वीणा बजाऊँ, नृत्य करूँ। तात ने वृहन्नला के वेश में जिस कला की शिक्षा मुझे दी थी।

(उठकर शिविर के दूसरे भाग मे निकल जाती है। सुभद्रा और द्रौपदी खोई-सी वहीं बैठी रहती हैं। वीणा की ध्वनि सुनाई पड़ती है। दावाग्नि में कोकिल की कूक-सी उसके कण्ठ की रागिनी आकाश में गूँज उठती है)

द्रौपदी उन्माद का पूर्व रूप है यह बहन ! इसके बालक को जब तक इस देह से काम रहेगा तभी तक यह रहेगी। पर नहीं हमारा पुत्र विजयी होकर लौटेगा। चलो हम शंकर का पार्थिव पूजन कर लें।

सुभद्रा मुझे कुछ नहीं सूझता.. सब ओर घना गहरा अन्धकार...

द्रौपदी   कृष्ण के रहते... आर्यपुत्र के रहते हम अमंगल की चिन्ता करें। कुछ नहीं। चलो उठो। (सुभद्रा का हाथ पकड़कर उठाती है)

(पर्दा गिरता है।)

# दूसरा अंक

( रणभूमि। युद्ध के बाजे तूर्य, भेरी, शंख बज रहे हैं। रथ के चक्रों की चिनगारी सामने उड़ रही है। हाथी, घोड़े, ऐसे बोल रहे हैं कि आकाश फट रहा हो )

अभिमन्यु ( नेपथ्यमें ) सुमित्र ! रथ रोक दो।

सुमित्र ( नेपथ्य में ) सौम्य ! शत्रु का विश्वास..

अभिमन्यु ( पैदल आगे बढ़ते हुए ) डरो न भद्र ! धर्म की इस धरती में मेरा शत्रु कोई नहीं है.. समझ रहे हो ? घर के कोने में शत्रुता को टिकाकर वीर समर में चल पड़ता है। धर्म की साधना करते हैं हम इस भूमि मे। वैर और द्रोह यहाँ पहुँचते-पहुँचते भूल जाते हैं। विपक्षी के आलिंगन में वही रस मिलता है, जिसे तुम प्रिया के आलिंगन में पाते होगे। इस भूमि में कोई विपक्षी से कभी पराजित नहीं होता जो वह अपने मन के द्रोह और क्रोध से न हारे।

सुमित्र कम से कम यह चन्द्रहास ही ले लें (तलवार आगे बढ़ाकर) कुमार लक्ष्मण के हाथ में काल सर्प-सा चन्द्रहास लहरा रहा है।

अभिमन्यु पर रथ से पहले वे ही उतरे। अपनी भूल का परिहार मैं अब उनसे निरस्त्र मिलकर करूँगा।

लक्ष्मण (प्रवेशकर) जय हो भाई ! अपनी आँखों का विश्वास नहीं हो रहा है मुझे। कान से सुनी बातों का विश्वास नहीं हुआ तो तुम्हारे रास्ते में आ गया। और अब मन तो यही करता है कि आँखों का भी विश्वास न करूँ।

(अभिमन्यु आगे बढ़कर अपने दोनों हाथ उसके कन्धे पर रख देता है। दोनों की आयु प्रायः एक ही है सोलह वर्ष। ललाट, आँख नाक सब कुछ जैसे परस्पर प्रतिरूप, सिर से नीचे लटकते काक पक्ष कन्धे पर हिल रहे हैं। पद्म और पद्मराग के जैसे दोनों के अंग बने हों। अभिमन्यु दो अंगुल लक्ष्मण से जैसे बड़ा है।)

अभिमन्यु रण में विलम्ब हो रहा है भाई ! तुम तो जैसे स्वप्न देख रहे हो। (उसके कन्धे हिला देता है)

लक्ष्मण तो तुम सचमुच चक्रव्यूह तोड़ने चले हो ?

अभिमन्यु हाँ. तो. .

लक्ष्मण और पितामह ने क्या कहा था .

अभिमन्यु (उन्मुक्त हँसी) हा...हा ..हा...

लक्ष्मण हैं . हैं.. (विस्मय की मुद्रा)

अभिमन्यु मनुष्य की सारी कामनाएँ जिस दिन पूरी हो जायेंगी यह धरती स्वर्ग हो जायगी भद्र ! पर इस धरती को स्वर्ग नहीं होना है तुम भी जानते हो। जीवकर्म के बन्धन जितने विषम होते हैं . वीर कर्म के बन्धन भी उतने ही विषम हैं। पितामह भी मनुष्य हैं, वे मनुष्यों में देवता हैं यही कहोगे। पर वे मनुष्य हैं पहले और फिर पीछे देवता।

लक्ष्मण रो पड़े थे वे.. पितामह के आँसू तुम न भूलोगे।

अभिमन्यु कामना जब पूरी नहीं होती मनुष्य रोता है और जब पूरी हो जाती है तब भी रोता है। देवता नहीं रोते, उनमें कामना भी नहीं होती!

लक्ष्मण रहने दो यह वेदान्त। नहीं जा सकोगे तुम इस युद्ध में ..

अभिमन्यु वेदान्त का जन्म इसी भूमि मे ..समर की भूमि मे ही हुआ था भाई। पण्डित चाहें जो कहें। वीर के बाणों पर चढ़कर वेदान्त के सूत्र उड़े थे ..धनुष की टंकार में प्रणव का नाद गूँजा था। अवसर नहीं है...नहीं तो मैं कह देता यह सब कैसे हुआ? अपनी अन्तिम साँस तक पितामह हम दोनो के जीवन की कामना करते है, भय है उन्हे कहीं यह युद्ध की अग्नि हम किशोरों को भी न भस्म करे, जिनके सारे कर्म अभी शेष है। उनकी भावी पीढी उन्हीं के सामने न मिटे। इसी कामना मे वे रो पड़े। पर उनकी यह कामना पूरी कैसे होगी? उनके ललाट मे विधाता ने जो रेख खींची उसमें तो उनके कुल का नाश तभी तक है जब तक उनकी साँसे चल रही है।

लक्ष्मण हम लोग न जायें आज के युद्ध में या जब तक यह युद्ध चले हम न लड़े। उनकी कामना पूरी होगी।

अभिमन्यु आज एक दिन मुझे लड़ने दो। तुम न आना। कल से मैं न लड़ूगा।

लक्ष्मण और आज ही कुछ हो जाय! (उत्सुक मुद्रा)

अभिमन्यु (उसके कन्धे से हाथ खींचकर) हाँ . जो कुछ हो जाय

(गंभीर मुद्रा) कोई बात नहीं भाई ! तुम तो रहोगे, तुम्हारे रूप मे पितामह की आधी कामना रहेगी ।

लक्ष्मण साधु ! साधु ! (एकटक उसकी ओर देखकर)

अभिमन्यु अरे ! इस तरह क्यों देख रहे हो ?

लक्ष्मण ( गंभीर मुद्रा ) देख रहा हू कामना के कितने खण्ड हो सकेंगे । बडे भोले हो तुम ! कामना हो तो पूरी हो । खण्ड न हो उसका.. ना ना.. नही . नहीं तब वह ..हाँ तो तुम न मानोगे ..

अभिमन्यु इस चक्रव्यूह को जो मैं न तोड सका तो आज मेरे पक्ष की हार होगी । देव, दैत्य यक्ष, और गन्धर्व विजयी तात के रहते; त्रिलोकीपति मातुल कृष्ण के रहते !

लक्ष्मण उस शूरसेन को तुम त्रिलोकीपति कहने लगे . जिसकी द्वारिका को हमारी सेना का एक ही मत्तकुंजर दाबकर समुद्र में धँसा सकेगा ।

अभिमन्यु चुप चुप उनकी निन्दा की बात हम नही सुनते । किसी भूमि से उनका मोह नहीं है इसी अर्थ में त्रिलोकीपति है वे ! ( कानों पर हाथ रखकर ) एक शब्द भी नहीं कहना है तुम्हें

लक्ष्मण अच्छी बात, पर तुम क्यों तोडने चले इस व्यूह को ? कोई दूसरा तोडे ..

अभिमन्यु मेरे पक्ष मे यह विद्या किसी दूसरे को नहीं आती ।

लक्ष्मण (विस्मय मे) किसी दूसरे को नहीं ?

अभिमन्यु किसी को नहीं। चाचा भीमसेन, मातुल धृष्टद्युम्न और यदुवीर सात्यकी मेरे पीछे रहेंगे।

लक्ष्मण इन लोगों में किसी को नहीं आती और तुम्हें इसी आयु में कैसे आ गई?

अभिमन्यु आयु की चिन्ता विद्या नहीं करती।

(द्रोणाचार्य का प्रवेश। दो भाग शीश और दाढ़ के बाल श्वेत। कन्धे मे धनुष, पीठ पर तूणीर। जैसे वीर रस स्वयं देह धर कर खड़ा हो)

द्रोणाचार्य तुम लौट जाओ वत्स! यह व्यूह तुम्हारे लिये नहीं बना।

अभिमन्यु (सिर झुकाकर दोनों हाथ जोड़कर) तब किसके लिए आचार्य! कौन है वह महाभाग? जिसके स्वागत का उत्सव आपने इस रूप मे किया? आप जानते थे इस व्यूह की कला हमारे पक्ष में केवल तात अर्जुन जानते हैं। फिर जब आपने इसकी रचना कर दी आपके सन्तोष के लिए मै आ गया। तात को इतनी दूर संसप्तक युद्ध में भेज कर आप मुझ पर दया दिखा रहे है जिसका अर्थ है हमारे पक्ष की पराजय। गजदल की गर्जन सिंह का बालक भी नहीं सहता। किसी पाण्डव के निधन को आपने यह व्यूह रच दिया। महारथी कैसा होता है इसका बोध मुझे नहीं है, रथपर चढ़कर आया हूँ। आज के युद्ध में आप मुझे जो स्थान देंगे, सिर झुकाकर मै उसे स्वीकार करूँगा।

द्रोणाचार्य भय है वत्स! व्यूह में घुसकर फिर जो तुम न निकल सके। निकलने की विधि पचीस संवत्सर के बाद ही लोग जानते हैं। इस अवधि तक शिष्य बनकर जो नहीं रहता और पहले ही वीर बनकर रण भूमि में ऊधम मचाता है उसे यह विधि कभी नहीं आती। गणित की गति में देह की गति डालनी पड़ती है इसके लिए... देह का बल इसमें काम नहीं देता।

अभिमन्यु तात आपके शिष्य हैं, पर मैं उनका शिष्य हूं आप से मुझे यह विद्या नहीं सीखनी है।

द्रोणाचार्य निकलने की विधि जानते हो तुम, यही इतना पूछना है मुझे।

अभिमन्यु उनकी विद्या का रहस्य मैं आपसे न कहूंगा। पूछ लेंगे आचार्य कभी उन्हीं से...

द्रोणाचार्य जो कहीं इसमें देर हो गई...

अभिमन्यु इसकी भी चिन्ता मुझे नहीं है। मेघ के भय से सूर्य अपना कार्य नहीं रोकता।

(ऊपर आकाश की ओर देखने लगता है)

द्रोणाचार्य (विस्मय से देखकर) मेरी ओर देखो!

अभिमन्यु यह समय अब सूर्य से निष्ठा और पराक्रम लेने का है आचार्य! आपकी ओर देखने का नहीं। मेरे संकल्प मे अब भगवान् भुवन-भास्कर का बल हो।

लक्ष्मण तब व्यूह के द्वार पर तुम्हें पहले मुझसे लड़ना पड़ेगा।

अभिमन्यु जब देख लूंगा व्यूह के बाहर नहीं निकल सकता।

अन्तकवाहन के कण्ठ की घंटी जब मेरे कानों में सुन पडेगी तब मैं तुमसे समर कर तुम्हारे साथ ही सूर्य मंडल को पार करूंगा। इसके पहले नहीं बन्धु! पितामह की कामना जब तक बनी रहे। प्रणाम आचार्य! आप का सेवक व्यूह से टकराने चल पडा...नदी पर्वत फोडकर जैसे अपना मार्ग बना लेती है..

(अभिमन्यु का प्रस्थान! द्रोणाचार्य विस्मय में उधर देखते रहते हैं। लक्ष्मण कभी द्रोणाचार्य की ओर और कभी अभिमन्यु की ओर देखता है। राजचिन्ह अंकित शिरस्त्राण और दाईं भुजा में अंगद पहने वीर वेश में, धनुष, तूणीर, भल्ल लिये सुयोधन का प्रवेश)

सुयोधन अब क्या होगा आचार्य!

द्रोणाचार्य (जैसे ध्यान तोड़कर) हाँ कहाँ क्या होगा?

सुयोधन आप कहते थे अर्जुन को छोडकर इस व्यूह की कला कोई नहीं जानता।

द्रोणाचार्य सोलह वर्ष की आयु में जब से यह धरती है किसी को नहीं आई। दाशरथि राम भगवान थे और यदुवंशी कृष्ण भी अब भगवान कहे जा रहे हैं। इन दो को छोडकर किसी तीसरे को यह कला नहीं आई। देवव्रत ने इसे बीस की आयु में जाना था और इसी आयु में परशुराम ने भी। सोलह वर्ष की आयु में अभिमन्यु इस कला को जान गया है इसका विश्वास मुझे नहीं होता! हो सकता है प्रवेश की विधि यह जानता हो पर...

सुयोधन (उत्सुक होकर) हाँ.. क्या? आगे की बात आप छोड़ गये।

द्रोणाचार्य लो वह भी सुन लो। उससे तुम्हारा कोई हित न सधेगा। निकलने की विधि यह न जानता होगा। अर्जुन ने इसे यह विद्या देने में जल्दी की। आगे की भगवान जाने।

सुयोधन (लक्ष्मण से) तुम्हें विश्वास नहीं होता था पुत्र!

लक्ष्मण हाँ ..तात! ..पितामह ने हम दोनों से कहा था कि हम युद्ध में तब तक न पड़ें जब तक कि उनकी अन्तिम साँस नहीं टूटती।

सुयोधन तो फिर यह ..

लक्ष्मण छोड़ दें तात इस वितर्क को। पितामह की कामना पूरी होती तो फिर यह गृह-कलह क्यों होता? धनुष की टंकार में प्रणव का नाद गूंजा था; बाणों पर चढ़कर वेदान्त के सूत्र उड़े थे, क्या-क्या कह गये भाई अभिमन्यु .. उन शब्दों में क्या मन्त्र था कि देह के एक-एक रोयें खड़े हो गये।

द्रोणाचार्य ऐसा कहा इस अर्जुनपुत्र ने वत्स! (विस्मय की मुद्रा)

लक्ष्मण हाँ आचार्य! तब वे जैसे किसी दूसरे लोक में थे, जहाँ न यह धरती थी न यह आकाश। उस लोक के विधि-विधान दूसरे थे, नियम-बन्धन दूसरे थे।

द्रोणाचार्य सावधान हो जाओ कुरुराज! धनुष की टंकार में प्रणव का नाद सुननेवाला बाणों की गति में वेदान्त के सूत्रों को देखनेवाला सुभद्रा पुत्र वीरों में विस्मय है। जो सोचो

न होगा, जिसकी कल्पना न की होगी जो सुना भी न होगा आज सब देखने को मिलेगा। देख लिया तुमने उसके ललाट से सूर्य किरणें फूट रही हैं। धनुष की डोरी में आज वह अपना प्राण बाँधकर चला है।

सुयोधन शत्रुपक्ष की आप बराबर स्तुति करते हैं। पहले अर्जुन की करते थे आज उसके पुत्र की।

द्रोणाचार्य सूर्य इसकी चिन्ता नहीं करता कि कौन उसकी स्तुति करता है और कौन नहीं। सच्चा वीर वही है जो अपने शत्रु के गुण को स्वीकार करे। दगा करने का स्वभाव कायर का है और वीर अपने विनय मे भी आगे है।

जयद्रथ (प्रवेशकर) प्रणाम आचार्य! शंकर के वरदान से मै आज अजेय हूँ। अर्जुन को छोडकर मेरे सामने आज कोई दूसरा टिक नहीं सकता...आँधी के आगे रुई का जैसे पता नही चलता...शत्रुओं का पता नहीं चलेगा आप मुस्करा रहे हैं। तपस्वी होकर तप की महिमा में आपको शंका है। आप यहीं रहे। देखें मेरे रहते व्यूह द्वार में कौन प्रवेश करता है?

द्रोणाचार्य सूर्य को तुम नित्य डूबते देखते हो सिन्धुराज!

जयद्रथ हाँ. हाँ देखता हूं.. संध्या के समय जब सूर्य डूबेगा हो सकता है तभी मै भी डूब जाऊँ पर जब तक सूर्य में तेज रहेगा . मेरा तेज शत्रु न सह पायेंगे। आज के युद्ध के आप केवल दर्शक बने मैं यही कहने आया हूं।

द्रोणाचार्य सुन रहे हो! (सुयोधन को संकेत कर) सिन्धुराज

आज तुम्हारी सेना के सेनापति बन रहे हैं। इस पद पर इनके अभिषेक का समय तो अब नहीं है, हाँ चाहो तो मेरे शिर का शिरस्त्राण इन्हें देकर सेनापति का गौरव दे सकते हो। तब तुम्हारी सेना में ये वैसे ही दीखेंगे जैसे देवसेना में कार्तिकेय देख पड़ते हैं।

जयद्रथ शंकर भगवान का वर लेकर अब कोई दूसरी कामना मेरे भीतर नहीं है आचार्य! उस वरदान-सा अमोघ आपका शिरस्त्राण नहीं है। भगवान ने एक अर्जुन को छोड़कर शेष सभी पाण्डवों के जीतने का वरदान मुझे दिया था।

द्रोणाचार्य शिव की तपस्या तुमने कब की?

जयद्रथ द्रौपदी का हरण मैंने पाण्डवों के वनवास काल में किया था आप सुन चुके होंगे।

द्रोणाचार्य हाँ...भीम ने तुम्हे हराकर बाँध लिया था।

जयद्रथ बस उसी अपमान के प्रतिकार के लिए आपके सेवक ने शिव की दारुण तपस्या की थी। इस देह मे जब केवल नसों का जाल रह गया, किसी अंग मे तिल भर भी माँस जब नहीं बचा भूतनाथ प्रकट हुए।

द्रोणाचार्य हाँ.. तब...

जयद्रथ देवाधिदेव ने वर माँगने को कहा ..

द्रोणाचार्य तपस्या मे सब सम्भव है सिन्धुराज तब तुमने वर माँगा।

जयद्रथ पाण्डवों को जीत लेने का वर मैंने माँगा।

द्रोणाचार्य और फिर भगवान ने तुम्हें कृतार्थ किया । पर यह बात अब तक छिपी क्यों रही ? तुम्हारी शक्ति से पाण्डव अब तक यमलोक में होते, मनस्वी देवव्रत की सेज बाणों की न होती, धरती के इन्द्र तब अकेले कुरुराज सुयोधन होते । बहुत पहले कहनी थी यह बात जयद्रथ पर अब तो देर हो गई ।

जयद्रथ विपक्ष की सारी सेना मैं जीत सकता हूं पर केवल अर्जुन को नहीं ।

द्रोणाचार्य अच्छा तो अर्जुन शंकर का तुमसे बड़ा भक्त है...ठीक है अर्जुन इस समय यहाँ से पाँच योजन दूर है, तुम्हारे वरदान का समय इसीलिए आज आ गया है ।

सुयोधन पाण्डव पक्ष के किसी महारथी के वध की आपकी प्रतिज्ञा भी आज पूरी होगी ।

द्रोणाचार्य यह प्रतिज्ञा मैं नहीं करता कुरुराज ! और न तो मैं यह व्यूह बनाता जो कहीं .

सुयोधन जयद्रथ के वरदान का पता होता आपको.

द्रोणाचार्य जयद्रथ का वरदान तभी तक है जब तक अर्जुन नहीं हैं । बालक अभिमन्यु को इस व्यूह की कला ज्ञात है जो यह जानता तो इस व्यूह की रचना नहीं करता ।

सुयोधन शत्रुओं के हित के लिए आचार्य !

द्रोणाचार्य अग्नि के अक्षरों में इस युद्ध का अन्त देख रहा हूं मैं जिसमें न तो तुम्हारे पिता के कुल का हित है और न

तो पाण्डु कुल का। अभिमन्यु का अन्त मेरे यश का कलंक होगा। और उसी के साथ पाण्डु के कुल का भी अन्त होगा।

सुयोधन मेरे कुल का भी अन्त आप देख रहे हैं।

द्रोणाचार्य कह दो अपने पुत्र कुमार लक्ष्मण से आज के युद्ध में ये न जायें।

लक्ष्मण तब पितामह की आँखों से जो सवेरे जल बहा उसका अर्थ यही था कि दोनों कुल का अन्त आज ही है।

द्रोणाचार्य सृष्टि के विराग्य देवव्रत भी आज रो पड़े थे?

लक्ष्मण उनकी आँखों से जल चला था . रोना कहें या न कहें उसे।

द्रोणाचार्य तुम दोनों को रण में न जाने की कामना उनकी थी। अभिमन्यु उससे विमुख होकर व्यूह तोड़ने चला है... पर तुम तो वही न करोगे।

लक्ष्मण कैसे कहूं.. कब क्या होगा...

सुयोधन तुम शिविर में चलो पुत्र ! अभिमन्यु पितामह की इच्छा के विरुद्ध युद्ध में नहीं जायेगा। तुम जो कहते थे, जिसे अपनी आँखों देखने तुम आये.. कान की सुनी बात पर जब तुम्हें विश्वास न हुआ.. तुम्हें नहीं रहना है यहाँ अब ..चले जाओ तुम शिविर में माता के पास।

लक्ष्मण अभिमन्यु को वहाँ मैं पहले न जाने दूंगा।

सुयोधन ( उद्वेग में ) कहाँ नहीं जाने दोगे?

लक्ष्मण सूर्य मंडल के उस पार जो अक्षय स्वर्ग है।

सुयोधन क्या कह रहे हो? इसी आयु में?

लक्ष्मण  इस युद्ध में धर्म के सारे जोड़ टूट चुके हैं तात ! इस युद्ध में ही धर्म को नया होना है । स्वर्ग का अधिकार आप बड़ों से पहले हम छोटों को मिल रहा है । स्वर्ग जाने की आयु अब यही रहेगी जो हम दोनों की है । सोलह वर्ष पूरे होते हमारा लोक बदल जायेगा ।

द्रोणाचार्य  ( सुयोधन से ) कुमार के इस कथन का कोई उत्तर हमारे पास नहीं है भद्र ! होता तब तो हम यह युद्ध रोक सके होते, नहीं था इसीलिए तो धरती की प्यास रक्त से बुझ रही है । ग्यारह दिन हो गये यही क्रम चल रहा है । वीरों के मूर्धन्य देवव्रत वाणशय्या पर हैं । अब आगे जो न हो जाय !

सुयोधन  पिता और पुत्र के बीच व्यवस्था आप न दें आचार्य !

लक्ष्मण  जीवन का मोह छोड़ कर समर की शपथ जिस दिन ली गई, व्यवस्था उसी दिन बनी थी तात !

सुयोधन  मृत्यु के शीश पर चरण धर कर चलने की शपथ धर्म की विधि से सबने ली थी । पर जब जिसके लिए इसका अवसर आये !

लक्ष्मण  मेरे लिए वह अवसर आज ही है ।

सुयोधन  ( उद्वेग में ) हैं . हैं ऐसी अशुभ बात इस समय · फिर इस युद्ध में हमारी विजय का फल क्या होगा । कौन भोगेगा कुरुभूमि और

लक्ष्मण  ( विराग की हँसी ) किसी ने कभी इस भूमि का भोग नहीं किया । यह सब भ्रम है । सबका भोग यह धरती

अपने करती रही है। सदा के लिए इसने किसी को स्वीकार नहीं किया।

सुयोधन भीमसेन से भी कठोर आचरण हो रहा है तुम्हारा। शंकर के त्रिशूल की चोट भी इससे अधिक न होगी। पिता के सामने पुत्र ने कभी मृत्यु की कामना नहीं की, हाँ जब से यह सृष्टि है यह बात न सुनी गई।

लक्ष्मण मृत्यु का समय और स्थान दोनों निश्चित है कल रात को आप कह रहे थे। जन्म के पहले वह स्थान भी निश्चित हो जाता है और वह समय भी। फिर उसे कौन रोक लेगा? अज्ञान की भंवर में आप क्यों पड रहे हैं? आयु जहाँ पूरी हो जायेगी धरती फोडकर काल सर्प डस लेगा।

द्रोणाचार्य अभिमन्यु के पीछे पाण्डव रथियों ने व्यूह पर धावा बोल दिया।

(कई शंख एक साथ बज उठते है। वीरों की ललकार सुनाई पड़ती है। हाथी चिग्घाड़ मारते हैं)

सुयोधन (उधर ही देखते हुए) आचार्य! जयद्रथ तो सच-मुच शिव बन गया है। महासमुद्र की लहरों से शत्रु जैसे तट के पर्वत से टकराकर छितरा रहे हैं।

लक्ष्मण मेघ से बिजली से प्रवेश कर गये भाई व्यूह में ..

सुयोधन (भय में) क्या कहा कौन ..

लक्ष्मण भाई अभिमन्यु का रथ व्यूह के भीतर निकल गया। नहीं रोक सके सिन्धुराज उन्हें।

सुयोधन भीमसेन और धृष्टद्युम्न भी उसी के पीछे।

द्रोणाचार्य जयद्रथ के अंग-अंग से रुद्र तेज फूट रहा है। अब किसी की गति नहीं है उसके सामने। भीमसेन, सात्यकी धृष्टद्युम्न हथेली में प्राण लेकर प्रयत्न कर रहे है पर किसी की नहीं चलती उसके सामने।

सुयोधन अभिमन्यु इन तीनों से बली है तब.. वह कैसे जा सका?

द्रोणाचार्य अर्जुन का अंश जो है उसमें...आत्मावैजायते पुत्रः .. अर्जुन और उसके अंशरूप अभिमन्यु को छोडकर जयद्रथ आज त्रिलोक विजयी है। उसके वरदान का यही अर्थ है।

सुयोधन जयद्रथ पर बडा भार आ पडा है! अकेले इतने महारथियो के साथ वह जूझ रहा है।

द्रोणाचार्य दर्शक बन कर केवल युद्ध देखने की बात तुम्हारे सामने वह कर गया। उसका कहना भी सच है आज तो केवल दो उसके सामने टिक सकते हैं।

सुयोधन अर्जुन और अभिमन्यु . यही दो।

द्रोणाचार्य पिता पुत्र दो नहीं होते भद्र! अर्जुन और शंकर। कोई देवता भी जयद्रथ की आँख में आज देखने का साहस न न करेगा। फिर भी उसकी सहायता को मैं जा रहा हू पर एक बात तुम्हें न भूले।

सुयोधन आचार्य का आदेश दास के सिर आँखों पर रहेगा।

द्रोणाचार्य अभिमन्यु पर मेरे शस्त्र न चलेगे। यह अधर्म मुझसे न होगा।

सुयोधन और जो वह कहीं हमारी सारी सेना को समाप्त कर दे।

द्रोणाचार्य जो हो ..उसके हाथ अपने वध की कामना मैं करूँगा पर अपने हाथ उसके वध की नहीं। बालक अभिमन्यु मेरा प्रतिद्वन्द्वी बने यह गौरव मैं उसे न दूँगा।

सुयोधन आप ही मेरे सेनापति हैं। सार्थवाह के रहते पोत समुद्र में डूबेगा ?

द्रोणाचार्य पोत न डूबे इसलिए मैं इसके शिखर पर खड़ा रहूँगा ? अर्जुन पुत्र के सिर पर जिस क्षण काल नाचने लगेगा, उसका विवेक छूट जायेगा और तब वह, मृत्यु के पूर्व जो उन्माद होता है उसमें पड़कर अपने शस्त्र का लक्ष्य मुझे बनायेगा। उसके उस शस्त्र को काटकर तुम्हारे प्रति मेरा जो धर्म है, उसकी रक्षा मैं करूँगा। सार्थवाह के रहते पोत कभी नहीं डूबता।

सुयोधन शत्रुओं का छल आप कैसे भूल गये ? शिखण्डी की कमल पत्र-सी लम्बी नुकीली आँखे जिसमें काजल की रेख दोनों ओर कान छू रही थी ..उसकी नागिन-सी लहराती वेणी, छाती पर झूमनेवाला उसका वह वासुकी की कंचुकी-सा चन्द्रहार, उसका वह रंगीन उत्तरीय और अन्तरीय, यह सब भूलकर आप किस धर्म की वार्ता कर रहे हैं ?

द्रोणाचार्य अर्जुन के रथ पर नारी वेश मे शिखण्डी को बैठाकर, उनके साथ जो छल किया गया . अबला को भर आँख न देखना जिस महापुरुष के धर्म की कसौटी जन्म भर रहा हो ..उसने जब देखा कि उसका धर्म तोड़ने को अर्जुन के रथ पर नारी बैठी है, उसने प्राण का मोह छोड़ कर भी धर्म बचा लिया, यह मैं जानता हूँ। अपनी

आँखों देखा था, मारे घृणा के शस्त्र फेंककर शत्रु की ओर पीठ फेरकर वह रथ में सिर झुकाकर बैठ गये और तब उनकी पीठ से जो बाण मारे गये वे ही उनकी शय्या बने हैं।

सुयोधन तब आप अभिमन्यु के शोक में उन्हें क्यों न भस्म करें ?

द्रोणाचार्य यह व्यूह तुम्हारे शत्रुओं के इसी पाप का परिणाम है। इसके बाहर अब अभिमन्यु का शव जायेगा। निकलने की कला वह नहीं जानता। मेरा एक भी शस्त्र उस पर नहीं चलेगा, फिर भी उसकी रक्षा नहीं है। अभी-अभी इस व्यूह के निकट जाने से मैं उसे मना करता रहा। दैव की गति है भद्र ! यह। जिसकी हर मुद्रा और हर भाव भंगी में काल का निमंत्रण नाच रहा था, हर साँस में जिसकी मृत्यु की लय गूंज रही थी; उसे अब कौन बचायेगा ? तुम राजकुमारों के शस्त्रगुरु बनने से अच्छा रहता भीख माँगकर अपना योगक्षेम चलाना। धनुर्वेद की साधना इस अभागे ब्राह्मण ने इसलिए की थी भद्र ! इस प्रलय के मूल में ब्राह्मण की शस्त्र विद्या है। एकलव्य का अँगूठा कटने के पहले मैंने अपना अँगूठा क्यों न काट डाला ?

सुयोधन त्राहि आचार्य ! आपके ललाट से, आँखों से, विराग की लौ निकल रही है। नहीं देखा जाता मुझसे आपका यह कराल रूप !

द्रोणाचार्य ( लक्ष्मण से ) कुमार ! तुम आज विश्राम करो ! बाण शय्या पर पितामह की कामना . .

लक्ष्मण  सृष्टि की सर्व प्रधान कामना से जन्म भर बचकर इस अन्त समय में उनको किसी कामना में बाँधना क्या अच्छा होगा ?

सुयोधन  मान जाओ पुत्र !

लक्ष्मण  भाई अभिमन्यु जब यमराज के महिष की घण्टी सुनेंगे मेरे साथ युद्ध करेंगे, इसके पहले नहीं। अभी कहकर गये वे।

सुयोधन  भाई नहीं ..वह तुम्हारा शत्रु है।

लक्ष्मण  इस पुण्य क्षेत्र में भी कोई किसी का शत्रु है ? ना..ना.. न कहें यह बात.. वीर धर्म के सबसे मोहक फल समर भूमि से तब कैसे मिलते हैं ? जब यहाँ भी शत्रु का भाव बना रहे।

सुयोधन  अभिमन्यु का जादू इस पर भी चढ़ गया है आचार्य ! अब मैं क्या करूँ ?

लक्ष्मण  आपको कुछ नहीं करना है तात ! काल अपना कार्य करता चला जा रहा है। पितामह की बाण-शय्या काल-कर्म की पताका बनकर तब तक उड़ती रहेगी, जब तक यह धरती रहेगी। जब लोग हमें भूल जायेंगे। कहाँ थी यह बाणशय्या ? कोई दिन आयेगा जब लोक की मेधा इसी की खोज करेगी। जब यह भूमि जल में डूबी होगी और सूर्यग्रहण के पर्व पर जब लोग उसी जल में अपने धर्म का संस्कार करेंगे।

द्रोणाचार्य  किसने कहा तुमसे यह सब कुमार ! (विस्मय की मुद्रा)

लक्ष्मण  पितामह के श्रीमुख से आज सवेरे आगत और अनागत

की जो वाणी निकली . गन्धमादन की गुहा से या किसी दिव्य लोक से वह ध्वनि आ रही थी। हम दोनों जैसे मन्त्र के वश में, इस धरती से बहुत दूर किसी ऐसे लोक में जा चुके थे, जहाँ से फिर लौटना नहीं होता। जहाँ पहुँच जाने पर इस धरती के आकर्षण का मोह नहीं रहता।

द्रोणाचार्य धरती का आकर्षण केवल मोह नहीं है कुमार! इसका गुरुतर सत्य है वह, जिसके बिना (चारों ओर हाथ घुमाकर) इस असीम शून्य मे वह कभी बिखर गई होती और तब तुम्हारे पितामह भी न होते दूसरों की बात कौन कहे। धरती से छूट निकलने की कामना को विवेक नहीं कहते। जिसका जितना अधिक अनुराग है इसके आकर्षण में उतना ही अधिक वह विवेकी है।

लक्ष्मण ठीक है आचार्य। चेष्टा करूँगा मैं कि आज के युद्ध मे न आऊँ। माता के अंचल में सिर डाल सो जाने की चेष्टा करूँगा। अन्तक की इस लीलाभूमि मे भी चाहूँगा कि कमल बनकर . पर सब कुछ जो मेरे वश में रहे। फिर मै चला अब। प्रणाम आचार्य! तात को भी प्रणाम है।

(लक्ष्मण का प्रस्थान। द्रोणाचार्य और सुयोधन दोनों उसे विस्मय में देखते हैं।)

द्रोणाचार्य व्यूह के मध्य भाग की तुम रक्षा करो भद्र! द्वार पर मैं चल रहा हूं। लक्ष्मण से सावधान रहना। महासमुद्र मे राघव का जो वेग होता है, उसी वेग में अभिमन्यु व्यूह

मथ रहा है। धूप के सूर्य किरण से बाण उनके धनुष मण्डल से निकलकर तुम्हारी सेना को भस्म कर रहे हैं। मघा के मेघ-सा जयद्रथ तुम्हारे शत्रुओं पर बाण-वर्षा कर उन्हें गतिहीन कर चुका है। दोनों ओर की सेनाएँ चित्रपटी-सी निश्चल हैं। जो विश्वास में कभी नहीं आया वही आँखों से सब देख रहे हैं।

सुयोधन आचार्य अथाह समुद्र में जलयान जब बीच से टूट जाता है, उस पर चढ़े प्रवासियों की जो दशा होती है अकेले अभिमन्यु से वही दशा मेरी सेना की हो रही है। इस समय आपको .

द्रोणाचार्य किसी भी दशा में अभिमन्यु के निकट मैं नहीं जाऊँगा। मुझे उत्तेजित न करो भद्र! अभिमन्यु का काल ले आयेगा उसे मेरे निकट। कह चुका हूँ मैं यह पहले अन्त तक यही कहता रहूँगा। कब कहाँ रहना है तुम्हारा सेनापति जानता है। धर्म और कर्म का उपदेश मुझे न देकर बने तो अपने कुल के इस बालक का वध करो!

सुयोधन साक्षात् काल हो रहा है वह इस समय। कुल और आयु के घेरे में वह नहीं आता। वसुसेन और गुरुपुत्र जैसे लोक विजयी वीर उससे त्रस्त हो उठे हैं। काल बालक है वह. कुल भी जैसे उसका यमराज का है।

द्रोणाचार्य देखो भद्र! वह कृतान्त-सा भीमसेन मुँह खोले हमें ग्रसने चला आ रहा है। तुम्हें यहाँ देखकर उसकी अग्नि

और भडक उठेगी। तुम व्यूह मे चले जाओ तब तक मैं इसका निवारण करूँ।

(सुयोधन का प्रस्थान। भीमसेन कन्धे पर गदा टिकाये प्रवेश करता है। उसकी सास वेग से चल रही है, दात खुले हैं सिर के बाल तन कर खडे हो गये हैं)

भीमसेन आग लगाकर आप यहाँ खडे हैं आचार्य!

द्रोणाचार्य तुम्हारे बुझाने के लिए भद्र! अभिमन्यु को अकेले व्यूह से छोडकर तुम इधर कहाँ भटक रहे हो?

भीमसेन आपके ऋण से छुट्टी लेना है आज।

द्रोणाचार्य अपने कुल का दीपक न बुझने दो आज! मेरा ऋण फिर कभी चुका देना। इसमे जल्दी क्या .है?

भीमसेन चुप रहो ब्राह्मण धनुष उठाओ। नहीं तो मैं ...

द्रोणाचार्य जयद्रथ के अनुरोध से मै आज केवल दर्शक हूँ...मेरे शिष्य कितना पौरुष दिखाते हैं आज ..तब तक धनुष नही उठाना है मुझे जब तक कोई मुझ पर प्रहार नहीं करता। अभिमन्यु को काल के मुख में झोककर जो तुम्हें गुरु से उऋण होना है तो चलने दो अपनी गदा। (एक ओर हाथ उठाकर) मेरे शस्त्र वहाँ रथ पर हैं।

भीमसेन कन्धे मे धनुप और पीठ पर तूणीर तो है।

द्रोणाचार्य तुम सरीखे बली शिष्य के गुरु का वेश बनाने के लिए। धरती पर खडे होकर धनुप की डोरी मै नही खीचता और बिना तलत्र के बाण भी कभी नहीं छूता!

भीमसेन (आर्त होकर) हाय! आचार्य! जयद्रथ आज पिनाकी

बना है। देख लिया मैंने उसके सामने हमारी एक न चलेगी। समुद्र जैसे एक साथ अनेक नदियों को धारण करता है, एक साथ वह अनेक वीरों को रोक रहा है। शत्रु पक्ष के सौ हाथियों को मार कर भी मैं दूसरा मार्ग न बना सका। धृष्टद्युम्न सात्यकी, किसकी-किसकी बात कहूं, सब विमूढ़ हो रहे हैं। अभिमन्यु के पहले मैं यह भूमि छोड़ चलूं, इसलिए आपके पास आया हूं कि आपसे वह गति सुलभ होगी।

द्रोणाचार्य पहले मुझे जाने दो भद्र वहाँ। पुत्र से पहले वह लोक पिता का है। गुरु का स्थान भी वही है जो पिता का है। गदा का ऐसा प्रहार करो कि मुझे दूसरी साँस न लेनी पड़े। घर आये अतिथि का अपमान द्रौपदी ने जिस क्षण किया और तुम भी विवेक भूलकर उसके आचरण में रस लेते रहे उसी क्षण देवव्रत की बाण-शय्या बनी। यह व्यूह भी उसी क्षण रचा गया दोनो दल का अब तक जो कुछ भोग रहा है, जो अभी होनेवाला है सब के बीज उसी दिन बोये गये, अंकुर फूटे, शाखाएँ बढ़ीं, पत्ते और फूल आये और अब फल का संग्रह हो रहा है। हम सब चले जायेंगे अपने पीछे फल छोड़कर, जिनका भोग हमारी भावी पीढ़ी को भी करना होगा।

भीमसेन सच है आचार्य! कृष्णा के उस अनाचार का फल यह युद्ध है।

द्रोणाचार्य रोना, हँसना, क्रोध और भय से अधीर हो उठना नारी

की प्रकृति है, पर पुरुष की प्रकृति में इन सबके ऊपर विवेक है। सुयोधन तुम्हारे अतिथि थे। शत्रु-अतिथि का मान मित्र-अतिथि से अधिक है। ऋषिवाणी में अतिथि देव है। पुरुष का विवेक नारी दम्भ के सामने झुका था भीमसेन!

भीमसेन वह सब सोचकर अंग-अंग में परिताप का विष व्याप्त हो रहा है आचार्य! पर अब करूँ क्या?

द्रोणाचार्य कर्म का फल सुख से भोगो जिन्हें भोगना ही है.. जिनसे छूट निकलने का कोई माध्यम नहीं, उनमें दुःख का बोध कायरता है। पतन के पथ में जहाँ एक बार फिसले फिर तो निचली तह तक जाना है। इस पथ में गंगा भी नहीं बची, एक बार गिरी तो फिर गिरती ही गई।

भीमसेन ऐं कैसे..

द्रोणाचार्य (मन्द हँसी) कैसे? ब्रह्मा के कमण्डल से शंकर की जटा में, फिर हिमवान के शिखर पर नीचे पृथ्वी पर और अन्त में समुद्र में, जिसका लगाव पाताल से है। स्वर्ग से गिरते-गिरते पाताल में। जिस गति से गंगा न बची हम कैसे बचते भीमसेन! राजनीति में नारी का आना सदा यही करेगा। पुरुष के विवेक पर नारी मोह का अंकुश समर की भेरी बराबर बजाता रहेगा।

भीमसेन अभिमन्यु अभी जीवित है आचार्य! (एक ओर हाथ उठाकर) उसके रथ की पताका वह देखिये अभी लहरा रही है।

द्रोणाचार्य भागो...भागो भीमसेन ! यहाँ से । जैसे बने अपने भतीजे की रक्षा करो । उसके न रहने पर पाण्डु कुल का दीपक बुझ जायेगा । कुल के नाश का दुःख पितर पितृलोक में भोगेंगे । अरे ? (एक ओर देखते हुए) पाञ्चाल पुत्र भी इधर ही भागा आ रहा है ! उसे भी मेरे साथ वैर शोधन करना है ? अभिमन्यु की चिन्ता उसे भी नहीं है ? ठीक है तब मैं चलूँ युद्ध में . जिसकी इच्छा हो अपने लेखे का भोग वहीं ले ।

(द्रोणाचार्य का प्रस्थान । धृष्टद्युम्न का धनुष चढ़ाये प्रवेश)

धृष्टद्युम्न कहाँ गया वह आयुधजीवी ब्राह्मण ? इस पापी का अन्त पहले हो ! क्रोध में कांपता रहता है)

भीमसेन हैं... हैं... आचार्य को अपशब्द ..

धृष्टद्युम्न होगा वह तुम्हारा आचार्य । हम पाँचालों का वह प्रधान शत्रु है । सर्प और गरुण का नाता है मेरा उससे... (सब ओर देखकर) वह जा रहा है रथ पर...तुमने उसे निकल जाने दिया ? (आहत सर्प-सा सिर हिलाता है)

भीमसेन एक-एक पल के साथ. हमारी एक-एक साँस के साथ अभिमन्यु का प्राण देह के बाहर जा रहा है ।

धृष्टद्युम्न बालू से तेल न निकलेगा । फूंक से पर्वत भी न उड़ेगा । दो हाथों से क्षीर सागर पार न होगा । सब कुछ कर लिया । धनुष की डोरी में प्राण बाँधकर भी हम व्यूह में न जा सके । तब सोचा इस पापी ब्राह्मण का भार धरती से दूर करें ।

भीमसेन सावधान पाञ्चाल ! गुरु की, पिता की, धर्म और माता की निन्दा मैं नहीं सुनता। मेरे अपने पाप का फल यह चक्रव्यूह है। तुम्हारी बहन की जीभ मैंने क्यों न पकड़ी जब वह घर आये अतिथि का अनादर करने लगी ? चुप रहो। संकट की यह घड़ी परस्पर विवाद की नहीं है। शपथ लो या तो व्यूह में हम दोनों घुसेंगे या वहीं खेत रहेंगे।

धृष्टद्युम्न खेत रहने का यत्न भी तो हम कर चुके। जयद्रथ के वरदान में हमारी मृत्यु नहीं केवल हमारी पराजय है। कैसा वरदान दिया भूतनाथ ने ? भस्मासुर वाला वरदान दिये होते कि उसके देखते ही हम भस्म हो जाते और इस दारुण संकट में अधजली मछली की गति हमारी न होती।

सात्यकी (प्रवेशकर) आत्म हत्या जो पाप कर्म न होता तो अपने ही खड्ग से मैं अपना शीश इस व्यूह की भेंट कर देता। धिक्कार है हमें . . हम अभी जी रहे हैं और हमारा प्राण इस व्यूह से, जाल से फँसे सिंह की भाँति मारा जा रहा है।

भीमसेन कौन है . . वह ? किसके सिर पर काल चढ़ा है जो हमारे अभिमन्यु का अमंगल करेगा ? तब यह सूर्य आकाश में न रहेगा। धरती रसातल जायेगी।

(भीमसेन उन्माद ग्रस्त जैसे गदा नचाता हुआ वेग से भागता है)

सात्यकी — हा ! देव ! अब क्या करें ? आर्य भीमसेन को उन्माद हो रहा है। उन्मत्त को किसी दुःख का तो बोध नहीं होता पाञ्चाल कुमार !

धृष्टद्युम्न — कौन जाने। लगता है हम सब उन्मत्त हो जायेंगे। लोक जयी अर्जुन का उन्माद इस सारी सृष्टि का तब नाश करेगा। हम सब उनके शत्रु बनेंगे। उनके पुत्र को जो हम न बचा पाये तो गाण्डीव की अग्नि हमारे सिर पर बरसेगी।

सात्यकी — समय से पहले जो मैं वीर बन जाने का पाप न करता तो इस व्यूह की कला मुझे भी आ गई होती।

धृष्टद्युम्न — क्या कहते हो ?

सात्यकी — बीस वर्ष की आयु से ही मैं आयुधजीवी बन गया। पाँच वर्ष और रुका होता तो चक्रव्यूह की विद्या का अधिकारी बन जाता ! समय से पहले ही वीर बन जाने का लोभ। मुझ नराधम को नरक में भी ठौर न मिलेगा।

धृष्टद्युम्न — ऐं क्या.. !

सात्यकी — इसी दिन के लिए भद्र ! उनका यह अभागा शिष्य उनके गाढ़े समय में काम न आये, उनके प्रिय पुत्र की रक्षा में समर्थ न हो। हाय ! जब वे मेरी ओर देखेंगे, उनकी आँखों की मौन वाणी जब मुझसे पूछेगी...आततायी भोज ! समय से पहले ही तू वीर बन गया इसी फल के लिए ? तब मैं क्या करूँगा ? किन आँखों से उनकी ओर देखूँगा। अभागे कान उनके शब्द कैसे सुनेंगे ?

धृष्टद्युम्न शंकर का त्रिशूल सहनेवाला पुत्र शोक का शूल सह सकेगा ? विश्वास नहीं होता भद्र ! मुझे। अभिमन्यु अपने साथ अर्जुन को भी ले जायेगा। यह व्यूह नहीं... पाण्डवों के भाग्यसूर्य का राहु है यह ! देखो .देखो .. सात्यकी उधर देखो.. (हाथ उठाकर संकेत करता है)

सात्यकी झंझा से क्षुब्ध समुद्र की टक्कर तट के पर्वत से हो रही है। मृत्यु के उन्माद में भीमसेन सिन्धुराज से जूझ रहे हैं। पापी न तो उनका प्राण ले रहा है और न व्यूह में मार्ग दे रहा है।

धृष्टद्युम्न हाय ! हाय ! अभिमन्यु का रथ भी व्यूहमण्डल से इधर ही आ रहा है। देख रहे हो वह ध्वजा। अभिमन्यु के बाणों से पीडित पर्वत खण्ड-से हाथी गिर रहे हैं।

सात्यकी धन्य वीर ! तुम हम कायरों के लिए व्यूह में नया मार्ग बना रहे हो ? चलें हम वहाँ।

धृष्टद्युम्न हाँ.. हाँ...चलें ( दोनों वेग से भागते हैं )

सात्यकी ( नेपथ्य से ) अब क्या होगा ? जयद्रथ वहाँ भी पहुँच गया। धर्मराज, विराट और भीमसेन भी वहीं चल पडे।

(शंख ध्वनि और कोलाहल। युद्ध दारुण हो उठता है। शंख, भेरी, और अन्य बाजों की ध्वनि में शस्त्रों की ध्वनि भी सुनाई पड़ती है। वीरों की ललकार और अट्टहास में दूर से आती रथ चक्रों की ध्वनि। धनुष पर बाण चढ़ाये अर्द्धनृत्य में अभिमन्यु का प्रवेश। आँखों से, ललाट से अग्नि की लौ-सी फूट रही है। साँस में आँधी का वेग और खुले दाँतों से यम का क्रोध निकल रहा है)

अभिमन्यु ( सिर के बाल पीछे फेंक कर ) निर्भय रहो सुमित्र! मेरे बाणों का मण्डल जो सब ओर से पूरा हो चुका है उसे तोड़कर शत्रु जब तक प्रवेश करेंगे हमारे अश्व विश्राम कर लेंगे।

सुमित्र ( नेपथ्य में ) जय हो कुमार। आपके साथ दास भी आज यशस्वी है। घोड़ों की देह से बाण निकाल कर लेप मैं लगा चुका। अब ये गरुण के वेग से वैरियों को ..
(सुमित्र का प्रवेश)

अभिमन्यु इन्द्र, वरुण, यम, स्वयं भवानीपति शंकर से भी आज मैं समर करूँगा भद्र! मामा कृष्ण और तात परन्तप भी जो आज मेरे मार्ग में आये...

सुमित्र व्यूह के द्वार तक मुझे चिन्ता थी...बाल हंस मन्दराचल नहीं उठायेगा, पर अब मैं निर्भय हूँ। बूढ़े आचार्य को

छोड़कर शत्रु पक्ष के सभी बड़े वीरों ने एक साथ समर कर देख लिया। अभी भी अवसर है कुमार !

अभिमन्यु हा हा हा व्यूह से बाहर निकलने का सुमित्र ! वह विद्या मुझे नहीं आती। व्यूह के सातवें चक्रमण्डल में हम इस समय हैं, यहीं आगे गर्भमण्डल कहीं होगा। वहाँ पहुँचकर मैं विजय का शंखनाद करूँगा।

सुमित्र फिर क्या होगा ?

अभिमन्यु हा. हा . हा भगवान् जानें। आगे का कोई ज्ञान मुझे नहीं है। जब तक शस्त्र हैं, कर्म के साधन हैं कर्म करना है। कौन जाने शस्त्रों के न रहने पर मुझे इन दो बाहों से, मस्तक से, दाँत से समर करना पड़े। दिन के तीन पहर इस व्यूह में अकेले महारथियों से टकराते बीते। एक पहर में संध्या आयेगी, शत्रु युद्ध बन्द करेंगे या तात जायेंगे। (उसका शरीर काँपने लगता है, स्वर गद्‌गद् हो उठता है।)

सुमित्र आदेश हो मैं रथ लौटाऊ।

अभिमन्यु कोई मार्ग नहीं मिलेगा सुमित्र ! सपने की इस सम्पत्ति का भरोसा न करो। लौटने की कला मैं जानता ही नहीं कै बार कहूं तुमसे ? प्रवेश की कला इन आँखों से परसों चित्र में सीखता रहा। सुना है जन्म के समय तात इस व्यूह का चित्र माता को दिखा रहे थे, उस समय का जो कुछ संस्कार हो, पर उसकी अब क्या ?

सुमित्र कुमार ! तब आपने यह साहस क्यों किया ?

अभिमन्यु पिता के यश के लिए, कुल के यश के लिए सारथी! पराजय का कलंक अब धर्मराज को न लगेगा। जन्म और मृत्यु की सीमा में जब तक यह साँस चले। इसकी चिन्ता क्या करूँ अब? सोलह संवत्सर में जो कुछ हो गया सो में भी न होता कौन जाने?

सुमित्र शत्रु चढ़ आये कुमार! रथ पर आ जाइए।

अभिमन्यु हाँ. देख रहा हूं. वसुनन्, गुरुपुत्र वह दुःशासन है सुमित्र!

सुमित्र वही है कुमार!

अभिमन्यु बढाओ रथ उसी ओर. जिस हाथ ने उसने माता का केश पकडा उसे काट फेंकूं

(दोनों का प्रस्थान। रथ चलने की ध्वनि)

अभिमन्यु (नेपथ्य मे) ओ! हो! अबला के केश पकडनेवाले हाथ में तुमने धनुष धारण किया है?

दुःशासन (नेपथ्य में) तीन पहर में मेरी सेना का नाश जो तूने किया, विश्वजयी महारथियों को विचलित कर जो तू अजेय बना है..

अभिमन्यु (नेपथ्य मे व्यंग्य का स्वर) हाँ तब .

दुःशासन तेरा सिर काटकर यहीं गिराना है, इसी बाण से, कमल दण्ड से जसे कमल तोड लेते हैं।

अभिमन्यु यह पुण्य तुम्हें पहले कमाना था; पुण्य कर्मों की वेला तुम नहीं जानते सवेरे होती है कम से कम मध्यान्ह से पहिले? तब तो पता नहीं तुम किस विवर मे छिपे थे।

सूर्य का रथ जब नीचे जा रहा है। तुम्हारे पुण्य का काल आया। पापी के सभी कार्य कुसमय में होते है?

दुःशासन अपने अन्त समय में जीभ से युद्ध करेगा?

अभिमन्यु चुप रह वाचाल! पूछ ले अपनी सेना मे, रथियो, महारथियो से अकेले तीन पहर मैं युद्ध कैसे करता रहा हू? मेरे बाणों पर चढ़कर स्वर्ग जाने वालों का नाम तो जान ले?

दुःशासन (नेपथ्य में) अपनी करनी का लेखा तू अब न रख सकेगा।

अभिमन्यु (नेपथ्य में) अरे! वह द्युतवाला हाथ दिखा। देखना धनुष से कहीं पासे न चलने लगें। (घृणा की हँसी)

दुःशासन (नपथ्य में) आयु भागी जा रही है तेरी अब जान ले...

अभिमन्यु (नेपथ्य में) जब तक मेरे हाथ में धनुष है? सीपी में समुद्र नहीं समाता पापी!

(धनुष की टंकार और बाणों की ध्वनि। सुयोधन और द्रोणाचार्य का प्रवेश)

सुयोधन अकेला अभिमन्यु हमारी सेना का यमराज बना है और आप अब भी प्रसन्न हैं।

द्रोणाचार्य श्रीकृष्ण और अर्जुन से जिस शस्त्र की शिक्षा इसने ली है, उसका प्रयोग ठीक उसी रूप मैं कर रहा है यह। कभी यह अर्जुन है, कभी कृष्ण और कभी यह अकेले दोनों की शक्ति प्रस्तुत कर रहा है। सोलह वर्ष का किशोर महारथियो को विस्मय के समुद्र में बोर रहा है। धनुर्वेद की गरिमा जो कभी देखी सुनी नहीं गई यह

दिखाता चला जा रहा है। मध्याह्न के सूर्य-सा यह इस काल व्यूह में अब भी दक्ष है। वीरता की इस विभूति की प्रशंसा कौन वीर नहीं करेगा? गुण की प्रशस्ति में शत्रु, मित्र का विचार नहीं करते भद्र!

सुयोधन तब तो वह हमारा संहार कर दे फिर भी आप उसकी प्रशंसा करेंगे।

द्रोणाचार्य निश्चय। कर दे वह हमारा संहार। हम नहीं रहेंगे तो क्या हुआ? रहेगा तो वह भी नहीं। रह जायेगी उसके विक्रम की कथा, जिससे लोक कभी दरिद्र नहीं होगा। वह देखो तुम्हारे अनुज के रथ, सारथी, घोड़ों को एक ही साथ गिराकर.. गिरा-गिरा तुम्हारा अनुज...

दुःशासन (नेपथ्य में) ओह...ओ...

सुयोधन क्या करेगा यह काल नाग? कर्ण, गुरुपुत्र और कृपाचार्य ने इसे रोककर मूर्छित अनुज के रथ को किसी प्रकार दूर कर दिया। असुरों से नष्ट किये गन्धर्व नगर की भाँति रथ सब ओर टूटे पड़े हैं, वीरों के कटे अंगों से धरती पटी है। आप इसे मारेंगे नहीं, वसुसेन और गुरुपुत्र भी इसे मारना नहीं चाहते।

द्रोणाचार्य कोई प्रमाण मिला इसका?

सुयोधन इतने वीरों का वध अपने सिर पर लेकर जो यह अभी तक जीवित है यही इसका प्रमाण है।

द्रोणाचार्य मुझ पर और मेरे पुत्र पर तुम्हें शंका हो पर कर्ण तो तुम्हारा सब से अधिक विश्वासी मित्र है।

सुयोधन भाग्य बिगड़ने पर सगे भी पराये हो जाते हैं आचार्य! अन्धकार में छाया भी साथ छोड़ देती है।

द्रोणाचार्य अपने घर के अन्धकार में दूसरे का प्रकाश असह्य हो उठता है। तुम्हारा दोष नहीं भद्र! सब की यही दशा है। मेरे पुत्र को इसके नौ मर्मभेदी बाण लगे हैं, कर्ण को सत्रह, कृपाचार्य और दूसरे महारथियों की भी यही दशा है। अपने मारनेवाले को कौन नहीं मारता? अपने प्राण किसे सस्ते होते हैं? देख रहे हो कहाँ जा रहा है उसका रथ? व्यूह के गर्भमण्डल में। कर्ण, कृप, शल्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, इनके साथ के इतने सारे महारथी उसे नहीं रोक पाये! व्यूह के हृदय में खड़ा होकर वह विजय का शंख फूंकेगा।

सुयोधन जी...हाँ...घूम पड़ा उसका रथ अब इस ओर (पार्श्व में हाथ उठाकर) यही तो है गर्भमण्डल। उसके शंख का घोष तब आप अपने कान से सुनेंगे। आपके रचे इस व्यूह की मर्यादा जो देवों से न मिटती. देव सेनापति और इन्द्र जिसमें समर्थ न होते वही कार्य सुभद्रापुत्र कर रहा है।

(नेपथ्य में कोलाहल, हँसी और ताली बजाने की ध्वनि)

द्रोणाचार्य क्या सोच रहे हो? जीवन भर में तुम्हारे लिए कुछ कर बैठने का अन्तिम अवसर अब आया। कुमार लक्ष्मण का रथ अभिमन्यु को रोके खड़ा है। कैसे आ गया तुम्हारा

पुत्र इस युद्ध मे ? माता के आंचल मे सो जाने की बात कहकर वह गया था।

सुयोधन (आर्त्त होकर) त्राहि आचार्य ! आपके सामने पुत्र का अमंगल न हो।

(वेग में दोनों का प्रस्थान)

द्रोणाचार्य (नेपथ्य में) तुम कहाँ लड़ोगे ? नदी तट से, पर्वत-शिखर से, वनस्थली के भीतर से दृश्य देखते हैं मूढ़। समर भूमि में दृश्य नहीं देखते लौट जाओ। तुम्हें देख कर पितामह की आंखों के मोती देखने लगता हूँ। लौटो ! छोड़ो मुझे यहां .

लक्ष्मण (नेपथ्य मे) यमराज के महिष की घंटी सुन रहे हो ?

अभिमन्यु (नेपथ्य मे) दया आ रही है तुम पर। दिन भर के युद्ध मे यह विकार मन से न आया। हटो ! हट जाओ मेरे मार्ग से। व्यूह के हृदय मे जा रहा हूँ मैं।

लक्ष्मण (नेपथ्य में) मुझे मारकर अब आगे बढ़ोगे।

अभिमन्यु (नेपथ्य में) हाँ अब सुना। अन्तक वाहन की घंटी बज रही है। मन्द-मन्द जैसे अभी दूर है। अभी समय है छोड दो मेरा मार्ग।

लक्ष्मण (नेपथ्य में) माता ने अपने दूध की लाज रखने को भेजा है मुझे। पुत्र के विजय की कामना किस माता की नहीं होती ? सुभद्रा चाची के यश में अब उनका भी भाग होगा। समर के लिये ही माता पुत्र को जन्म देती है।

जो पुत्र रण में यश न ले उसके जन्म देने से अच्छा है नारी का बाँझ होना।

अभिमन्यु (नेपथ्य में) विस्मय हो रहा है लक्ष्मण! मुझे तुम्हारी यह बात सुनकर. राजरानी तुम्हे तब मृत्यु के मुख में झोंक रही है।

लक्ष्मण (नेपथ्य में) वही काम कर रही हैं जो तुम्हारी माँ ने पहले किया।

अभिमन्यु (नेपथ्य में) मेरे लिये कोई चारा नहीं था मूढ़! अपनी आयु देखो, मुकुट की मणि में अपना मोहक रूप देख लो .. रेख भी नहीं भीनी अभी और मृत्यु का अनुराग बढ़ गया? जीवन के सारे कर्म अभी शेष हैं जिनके

(कर्ण और अश्वत्थामा का युद्ध वेश में प्रवेश। दोनों की मुद्रा विस्मय और रोष की है)

कर्ण हाँ क्या कहा?

अश्वत्थामा कह रहा है वह अपना प्रतिनिधि छोड जायेगा पर लक्ष्मण तो अभी कुमार है। उसके अन्त के साथ कुरु-वंश का अन्त है।

कर्ण तब इसकी पत्नी गर्भवती है?

अश्वत्थामा लगता तो यही है। पूज्यपाद दोनों के बीच में खडे हो गये।

लक्ष्मण (नेपथ्य में) होनी होकर रहेगी आचार्य! किस भ्रम में आप पड रहे है?

सुयोधन (नेपथ्य में) पुत्र! आचार्य से मला ..

लक्ष्मण (नेपथ्य में) माता के दूध की लाज रखनी है तात!

अभिमन्यु के निधन से सुभद्रा चाची की जो महिमा होगी वह मेरे जीने से मेरी माता की न हो सकेगी। मेरे ललाट पर विजय तिलक अपने हाथ लगाकर उन्होंने कहा अपने दूध की लाज रखने को। इस भूमि पर मैं अकेला पुत्र नहीं हूं। जो जन इस पुण्यभूमि में खेत रहे उनकी भी माताएँ थीं। प्रसव की पीडा उन्हें भी हुई थी।

अभिमन्यु ( नेपथ्य में ) साधु! साधु! लक्ष्मण। हम दोनों के रक्त से इस समर का अन्त हो। भगवान जानता है, तुम्हारा प्राण लेना मैं नहीं चाहता था। पितामह की कामना मेरी भावना को रङ्ग दे रही थी। वाण शय्या से कठिन पीडा अभी उनके ललाट की रेख में है। हम न रहें और तब हमारे जनक ठूंठ कंकाल बने रहें। इस समर यज्ञ की अन्तिम आहुति हम बनें।

द्रोणाचार्य ( नेपथ्य में ) तुम दोनों के न रहने पर यह समर कितना दारुण होगा सोचकर हृदय काँप रहा है। धर्म की मेखला टूट जायेगी तब...

लक्ष्मण ( नेपथ्य में ) उसे तोडकर यह समर ठना था आचार्य! इन्द्रप्रस्थ के सभा भवन में जब घर आये अतिथि का अपमान हुआ, जिसके प्रतिकार को द्यूत की सभा रची गई।

अभिमन्यु ( नेपथ्य में ) सच है इसी दिन की भूमिका थी वह .... हम दोनों में धर्म युद्ध हो लक्ष्मण! स्वीकार करते हो?

लक्ष्मण ( नेपथ्य में ) हाँ भाई। हमारे द्वैरथ युद्ध में धर्म की गति फिर स्थिर हो ! मेरी रक्षा में तात या आचार्य ने, मेरे दल के किसी दूसरे वीर ने जो शस्त्र का प्रयोग किया तो मैं नरक में पड़ूँगा। हमारे इस समर के साक्षी स्वयं धर्म या भगवान् सूर्य हों।

(सब ओर 'साधु साधु' 'धन्य धन्य' की ध्वनि सुन पड़ती है। कई शंख एक साथ बज उठते हैं)

द्रोणाचार्य (नेपथ्यमें) हृदय को वज्र करो कुरुराज ! धर्म की यह अन्तिम लीक बनी रहने दो। हानि लाभ का लेखा वणिक की पण्यवीथी में चलता है। हटो, हट चलो यहाँ से इतनी दूर जहाँ पुत्र के प्रेम में भी धर्म की ज्योति मिले।

कर्ण कौन चला रहा है यह लोकचक्र? किसके हाथ की कठपुतली हैं हम ? जो नहीं चाहता था अभिमन्यु को वही करना पड़ा। लक्ष्मण को मारकर अब वह मृत्यु का स्वागत करेगा।

अश्वत्थामा आँधी में पड़े वृक्ष की दशा इस समय कुरुराज की हो रही है। ऐसे चल रहे हैं कि पैरों के नीचे अंगारे बिछे हों !

कर्ण दैव बायें हैं गुरुपुत्र उनके। काल की गति दुर्निवार है। किसे पता था कि यह सोलह वर्ष का किशोर वीरों का विस्मय बनेगा ? अनुकूल वायु में दावाग्नि का वेग बन में बढ़ता है जैसे' समुद्र में बडवानल जैसे...व्यूह के भीतर जिस समय यह अबाधगति से धँस पड़ा तब से तीन पहर

बीत गये चौथा भी चल निकला पर इसका धनुष अलातचक्र जो तब बना अभी वैसा ही है। सूर्य का तेज भी घटता है पर इसके तेज का ह्रास नहीं। लक्ष्मण को देखकर इसकी आकृति पर कुछ कोमलता आ गई थी। पर अब फिर वही रुद्र भाव इसकी आँखों मे भर रहा है।

अश्वत्थामा अंगराज तुम इसे बराबर बचाते रहे हो। शत्रु का पुत्र है यह तुम्हारे।

कर्ण किरीटी मेरा शत्रु अब नहीं है गुरुपुत्र!

अश्वत्थामा अरे क्या कह रहे हो...

कर्ण हाँ जो अब वह मेरा शत्रु नहीं है। अभिमन्यु मुझे उसी तरह खींचता रहा है जैसे मेरे अपने तन का नाता हो उससे। फिर भी उस पर दया नहीं की मैंने। केवल दिव्यास्त्रों का प्रयोग नहीं हो सका मुझसे। सो केवल इस विचार से कि बालक के विरुद्ध उन शस्त्रों का प्रयोग वर्जित है। ऐसे विस्मय से न देखो। कारण कभी न पूछना . वह मैं अपने भगवान् से भी न कहूँगा, उनसे कुछ छिपा नहीं है यह जानकर भी...वह बात मेरे मुँह से न निकलेगी। न होता यह युद्ध भूदेव! जो मैं अपने जीवन का सबसे बड़ा सत्य पहले जानता।

अश्वत्थामा जीवन के सबसे बड़े सत्य का सम्बन्ध जन्म के साथ होता है अंगराज!

कर्ण नहीं कहना है मुझे अब आगे एक शब्द भी, जन्म का

सत्य केवल जननी जानती है, मेरी जननी का पता जो हो तुम्हें.. (उदास हो उठता है)

अश्वत्थामा वसुसेन ! तुमने तो मुझे उत्सुक कर दिया।

कर्ण खोज लो मेरी जननी को तुम्हारी उत्सुकता मिट जायेगी !

अश्वत्थामा अब तक क्या वे जीवित होंगी ?

कर्ण यह मानकर खोजो कि अभी वह जीवित है। माता गान्धारी अभी जी रही हैं, धर्मराज युधिष्ठिर की माँ भी अभी जी रही हैं,. कौन जाने मेरी माँ भी अभी जीवित हों।

अश्वत्थामा देवी कुन्ती को माता नहीं कह सकते तुम। इसलिए कि वे तुम्हारे शत्रु अर्जुन की जननी हैं।

कर्ण अभी-अभी कहा तुमसे अर्जुन अब मेरा शत्रु नहीं है। अभिमन्यु के प्रति मेरे मन में पुत्र का आकर्षण है।

अश्वत्थामा तब देवी कुन्ती भी तुम्हारी माँ बन सकेंगी। देवी गांधारी को जैसे माता कहा।

कर्ण तब जगत् दरिद्र हो उठेगा ब्राह्मण ! अर्जुन और कर्ण जो दोनों एक माता के पुत्र बन जायें तब संसार भर की माताओं की महिमा मिट जायेगी। गाण्डीव की रोक धरती पर कहीं नहीं है, जो कहीं कालपृष्ठ भी उसी ओर से चले तो पौरुष और धर्म दोनों का लोप होगा। जिस दिन अर्जुन मेरा प्रतिद्वन्द्वी न रहेगा, सुन रहे हो . मेरा भाग्य फूट जायेगा।

अश्वत्थामा अभिमन्यु और लक्ष्मण रथ से उतरकर गले लग रहे हैं।

कर्ण — परस्पर की शत्रुता से दूर अनासक्त भाव से युद्ध करेंगे तब दोनों। हमसे अच्छी थी यह हमारी भावी पीढ़ी जो हमारे ही पाप से हमसे पहले मिट रही है।

अश्वत्थामा — इन दोनों को खोकर अर्जुन और सुयोधन अपने पक्ष के वीरों के साथ शोक के समुद्र में एक ही साथ डूबेंगे। (धनुष की भयानक टंकार गूंज उठती है)

कर्ण — रथ पर लौटकर दोनों ने एक साथ धनुष टंकार किया। एक साथ ऐसी टंकार जैसे एक ही धनुष की हो। सगे भाई-सा व्यवहार इन दोनों का जीवन भर निभ गया। वैर का काला रंग इनके मन पर कभी चढ़ा नहीं।

अश्वत्थामा — कम से कम एक का अन्त तो आज है।

कर्ण — (दुःख की हँसी) हूँ . हूँ. .इनका साथ वहाँ भी न छूटेगा। होनी का संकेत तो यही है। (बाणों के छूटने की ध्वनि क्रमशः बढ़ने लगती है)

अश्वत्थामा — पर्वत गुहा से जैसे क्रौंच निकलते हैं, दोनों के बाण चल पडे। अरे ! इस समय दोनों के दाँत मन्द हास्य में खुल रहे हैं। अंगराज ! क्या अन्त तक इन्हें क्रोध न आयेगा ?

कर्ण — लक्षण तो यही है मद्र ! यमराज को भी आज विस्मय हो रहा होगा। इनकी हँसी में पिघलकर कहीं वह आज अपना कर्म न भूल जाय। दो घडी जो ये धर्म युद्ध में लगे रहे इसी तरह और सूर्य भगवान् डूबने लगें तब यह युद्ध बन्द होगा और दोनों बच जायेंगे।

अश्वत्थामा ऐसा हो तो मैं कल शंकर की पूजा ऐसी करूँगा जैसी कभी न की हो। सौ पंखुड़ियोंवाले सौ कमल जहाँ भी मिलें कल शंकर पर चढ़ेंगे।

कर्ण इस युद्ध का वर्णन कवि किन शब्दों में करेगा गुरुपुत्र?

अश्वत्थामा किन शब्दों में...

कर्ण आकृति पर क्रोध की मुद्रा, आँखों में अग्नि का रंग, साँस में मरुत का वेग, टेढ़ी भौं, दाँतों की रगड़, अपमान और निन्दा के भाव, अब तक कवि यही गाते आये हैं। इन दोनों के युद्ध में यह कुछ नहीं है। तब इसका चित्रण कवि वाणी में कैसे हो?

अश्वत्थामा क्या कठिन है? आकृति पर अनुराग की मुद्रा, आँखों में शील का रंग, साँस में मलय मरुत, स्निग्ध भौं, दाँतों पर हँसी, प्रीति और विनय के भाव। (मन्द हँसी)

कर्ण दोनों की ज्या एक साथ कटी।

अश्वत्थामा धनुष पर डोरी चढ़ाना भूलकर दोनों मन्त्र-मुग्ध-से देखने लगे हैं।

लक्ष्मण (नेपथ्य में) युद्ध करना है हमें भाई! इस क्रीड़ा से काम न चलेगा।

अभिमन्यु (नेपथ्य में) वीर के लिये युद्ध क्रीडा से अधिक कुछ नहीं है। क्रीडा का सुख जो युद्ध से ले ले.. समझ रहे हो। आग्नेय, वायव्य, वारुण करते चलो प्रयोग सभी दिव्यास्त्रों का . पर मानो उसे क्रीड़ा। अग्नि की लपटें आकाश चाटें, आँधी के वेग में हाथी और रथ उड़ें, जल की

धारा में धरती डूबे, पर हमारे भीतर द्रोह न हो, क्रोध न हो, भय भी न हो!

द्रोणाचार्य (नेपथ्य में) साधु! वत्स! तुम धन्य हो। तुम दोनों का यश तब तक मन्द न हो जब तक इस भूमि पर वीरों का जन्म हो, कवियों के कण्ठ में जब तक वाणी हो, गंगा में जब तक जल रहे और रहे नारी के हृदय में पुत्र की कामना!

अभिमन्यु (नेपथ्य में) अनुग्रह है आपका आचार्य!

लक्ष्मण (नेपथ्य में) आशीर्वाद की महिमा हम न बिगाड़ें!

कर्ण देखो गुरुपुत्र! यह समर। दो सूर्य, दो रुद्र, दो यम लड़ रहे हैं जैसे। अलातचक्र से दोनों के धनुष घूम-घूमकर वीरों के हृदय में हर्ष और कायरों के हृदय में भय भर रहे हैं। आचार्य के अंग-अंग से आनन्द की लहरें उठ रही हैं।

(सब ओर से कोलाहल, शंख और धन्य धन्य के स्वर गूंज रहे हैं। दूर पर चारण गीत सुन पड़ता है, जो क्रमशः निकट आ रहा है। दिशाओं में अग्नि की लपटें जैसे उठ रही हैं। चारण प्रवेश करता है)

अश्वत्थामा गाओ चारण! तुम्हारे गीत के लिए इससे बढ़कर पुण्य पर्व दूसरा न मिलेगा! ऐसा गीत भद्र! जिसमें वीर के सामने मृत्यु हाथ जोड़े खड़ी हो। जिसके सम्मोहन में यमराज को नींद आ जाये। सूर्यमण्डल के भीतर से

होकर जो अक्षय स्वर्ग का मार्ग है हम इन्हीं आँखों से देखने लगें।

चारण तो फिर सुनो देवता। दोनों राजकुमार जैसे दो कामदेव लड रहे हैं। आँखें इनके युद्ध को देखेंगी और तब कण्ठ में सरस्वती बैठकर मेरी वाणी के सहारे इनकी प्रशस्ति गायेंगी।

(गीत)

धरा में झुकी मृत्यु दासी बनी।
लिखे चित्र में से खड़े देवजन ये,
कि अन्तक की सोई समर में अनी। धरा में .
वरण को तुम्हारे मगन मन, चलीं ये
पुलक में, जयति जय अमर-कामिनी। धरा में,..

(भाव में विभोर-सा चारण गाता हुआ निकल जाता है। सब ओर से जैसे इसी गीत की ध्वनि सुन पड़ती है। कर्ण और अश्वत्थामा धरती पर धनुष टेक कर आँखें बन्द कर लेते हैं)

द्रोणाचार्य (नेपथ्य में) इन आँखों से ऐसी लुभावनी वीरगति न देखी। सावधान कुरुराज!

कर्ण (अकस्मात ऊपर देखकर) अहा! प्रफुल्ल कमल लेकर जैसे गरुड उडा जा रहा है।

अश्वत्थामा (ऊपर देखकर) अभिमन्यु का अर्धचन्द्र बाण गरुड़ है और लक्ष्मण का शीश कमल..

कर्ण दूसरी उपमा मुझे न सूझी।

सुयोधन (नेपथ्य में) पुत्रघाती! मेरा क्रोध तुझे काल सर्प बनकर डसेगा। पिता . माता...और उस किशोरी पत्नी को स्मरण कर।

अभिमन्यु (नेपथ्य मे) लक्ष्मण को छोड़कर दूसरा कोई मेरी स्मृति मे अब नहीं आयेगा। कुरुराज! भस्म कर दो मुझे अपने क्रोध की अग्नि मे.. शपथ दे रहा हूं मैं तुम्हारे पक्ष के वीरों को.. वीर धर्म की शपथ है उन्हे जो वे सब मिल कर मेरा वध न करें। आत्मघात पाप न होता तो मेरी असि मेरे कण्ठ पर होती। भगवान् यमराज कब से मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं, लक्ष्मण घूमकर मेरी ओर देख रहा है मैं अभी भी देह के बन्धन में हूँ।

द्रोणाचार्य (प्रवेशकर) रक्षा करो वसुसेन! कुरुराज की। (अश्वत्थामा से) तुम भी पुत्र! उसने तुम लोगों को जो शपथ दी सुन लिया तुम लोगों ने।

कर्ण तब मैं अपनी ऐन्द्री शक्ति का प्रयोग इस बालक पर करूँ। दूसरे किसी शस्त्र के वश में यह नहीं है। आप जानते है वह शक्ति केवल अर्जुन के लिए है।

द्रोणाचार्य इसके हाथ में जब तक शस्त्र है, इन्द्र और यम से, शंकर और विष्णु से यह न हारेगा। इसके एक एक शस्त्र को काट फेको और जब शस्त्र न रहेंगे.. समझ रहे हो। अपने शस्त्र का लक्ष्य जो इसके शरीर को न बनायें, वे इसके शस्त्र काटें। शरीर पर आघात दैव जिससे कराये।

कर्ण इस कार्य का श्री गणेश मैं इसके धनुष की ज्या काटकर कर रहा हूँ।

(कर्ण और अश्वत्थामा का प्रस्थान। युद्ध भयानक हो उठता है)

अभिमन्यु (नेपथ्य में) अंगराज गिन लो कितने महारथी एक साथ मुझ पर प्रहार कर रहे हैं?

कर्ण (नेपथ्य में) तुमने इसी के लिए अभी शपथ दी ..

अभिमन्यु (नेपथ्य मे) शपथ दी कब?

कर्ण (नेपथ्य में) काल पाश में फँस जाने पर किसी को अपनी बात स्मरण नहीं रहती!

द्रोणाचार्य कर्ण उसकी ज्या काटने गया और अपनी ज्या न बचा सका। तो इस अभिमन्यु के रूप में काल स्वयं लड़ रहा है। जिस पर किसी वीर की कुछ चल नहीं रही है। बचो कर्ण! यह बाण तुम्हारे हृदय में लगेगा। नहीं बच सका। बाण कवच भेद कर हृदय में लगा और रथ का दण्ड पकडे वह अर्ध मूर्छित है?

अभिमन्यु (नेपथ्य में) व्यूह के गर्भ मण्डल में मैं आ गया आचार्य! या अभी और चलना है?

द्रोणाचार्य धन्य हो वीर! तुम इस समय व्यूह के गर्भ मण्डल में अकेले महारथियों के बीच में ..

अभिमन्यु (नेपथ्य में) देख लें अपने शिष्यों का युद्ध आचार्य! कर्ण ने मेरी प्रत्यञ्चा काट दी।

द्रोणाचार्य वसुसेन मेरे शिष्य नहीं हैं। इसी दिन के लिए मैंने इन्हें अपनी विद्या से वंचित रक्खा।

अभिमन्यु (नेपथ्य में) तीन बार मेरी प्रत्यञ्चा काटी गई। आपके पुत्र ने भी यही कार्य किया। तब मैं फेंक रहा हूँ यह धनुष। (धनुष के दूर गिरने की ध्वनि)

द्रोणाचार्य एक-एक कर सभी शस्त्र कटते जा रहे हैं। परशु, परिघ असि, भल्ल...जैसे इसके शस्त्रों का भी अंत न होगा।

अभिमन्यु (नेपथ्य में) सावधान आचार्य! मेरा अन्तिम अस्त्र आप पर चल रहा है।

द्रोणाचार्य आने दो पुत्र! कहीं कुछ देख सुन रहे हो अभी या नहीं?

अभिमन्यु (नेपथ्य में) अनेक यमराज और उनके वाहन, जिनके कण्ठ की घण्टी में मेरे प्राण की लय बज रही है! (दायें हाथ में चक्र घुमाते अभिमन्यु का प्रवेश। चक्र की गति में उसका शरीर मण्डल बना रहा है। चक्र के प्रकाश में उसके शरीर की छाया-सी देख पड़ती है।)

अभिमन्यु (भयानक हंसी) हा... ...हा.... तुम्हारे दिन पूरे हो गये ब्राह्मण!

द्रोणाचार्य भगवान करे वत्स!
(अभिमन्यु द्रोणाचार्य को लक्ष्य कर चक्र चलाता है। द्रोणाचार्य बाणों से चक्र को खंड खंड कर गिरा देते हैं)

अभिमन्यु तो आप बच गये आचार्य! मुझे वहाँ अकेले जाना है। रथ के चक्र से आचार्य! अब रथ के चक्र से (वेग में प्रस्थान)

द्रोणाचार्य वीरो में तुम्हारी रेख कभी न मिटेगी पुत्र...

अभिमन्यु (नेपथ्य में) हा.. हा.. हा.. (उन्माद की हँसी)

कर्ण (प्रवेश कर) मृत्यु के पूर्व का उन्माद है यह आचार्य ?

द्रोणाचार्य हाँ भद्र! अन्त समय मे भी महान् की गति महत् होती है। अस्ताचलगामी सूर्य की किरणें उस समय पर्वत शिखर और वृक्षों की ऊँची डाल पर रहती हैं। अर्जुन-पुत्र इस अन्तिम वेला में भी महान् है। देख रहे हो सब ओर से शस्त्र बरस रहे हैं, रथ का चक्का हाथ मे लेकर भैरव नृत्य कर रहा है जैसे..भूमि के उद्धार मे भगवान् वाराह की जो गति समुद्र के अतल मे थी कुछ वैसी ही गति इस समय इसकी है।

सुयोधन हाय आचार्य '(दोनों हाथों मे सिर पकड़ कर प्रवेश करता है।)

द्रोणाचार्य धीरज धरो भद्र ?

सुयोधन पुत्र घाती अभी जीवित है। वज्र के बने हैं अंग इसके जिन पर शस्त्रो की वर्षा, पर्वत शिखर पर जल वर्षा-सी निष्फल हो रही है।

द्रोणाचार्य वह समय जिस क्षण आ पहुँचेगा फूल के आघात से इसके प्राण पखेरू उड जायेंगे। दीपक की लौ बुझने के पहले बढ़ जाती है। अब इसे बुझना है। देह भर में जितने घाव लगे है, कुसुमित किंशुक-सी इसके शरीर की शोभा अब मिटने वाली है। इसके रक्त से कितनी धरती रंगी गई कितना रक्त बह निकला ..कौन जाने ? अन्तिम

बूँद निकलते ही यह धरती पर आ गिरेगा। क्रोध और परिताप भूलकर अपने कुल के परम तेजस्वी प्रकाश पुञ्ज का मिटना देखो।

सुयोधन शिव के शूल से दारुण होता है पुत्र वियोग का शूल।

द्रोणाचार्य अभिमन्यु की मृत्यु से वह पीडा और बढ़ेगी भद्र! क्रोध में मन की निसर्ग गति को भूलकर तुम उसकी मृत्यु की कामना कर रहे हो। दोनों दल में कौन है ऐसा जिसके मर्म में लक्ष्मण का शूल नहीं गडा और अब किसके हृदय में अभिमन्यु का सूल न गडेगा? शत्रु जब नहीं रहता तभी उसके गुण देख पडते हैं। अभिमन्यु तो तुम्हारा शत्रु कभी नहीं रहा।

सुयोधन कुम्हार के चक्के-सी धरती घूम रही है। (हाँथों में सिर थामे धरती पर बैठ जाता है।)

कर्ण अब...अब.. गिरा.. गिर पडा अन्त में.

द्रोणाचार्य अन्तिम बूंद रक्त की जब तक रही ..

कर्ण हैं..हैं कहाँ जा रहे हो गदा उठाये तुम...

द्रोणाचार्य रुको...रुको.. अरे आततायी! धिक्कार है तुझे..

सुयोधन हाय! हाय! यह क्या?

(गदा के भीषण प्रहार में कपाल फूटने की ध्वनि होती है)

द्रोणाचार्य उत्सव मनाओ भद्र अब! तुम्हारे भतीजे ने मरणासन्न अभिमन्यु के सिर मे गदा का प्रहार किया है।

सुयोधन (भागते हुए) क्यों रे नीच! लक्ष्मण के यश का ग्राह! यह तूने क्या किया?

(नेपथ्य में) पितामह की शरशय्या का फल है यह तात ! इस अकेले ने कितने महारथियों और कितनी सेना का नाश किया। यह न भूलें।

सुयोधन (नेपथ्य में) तब कहाँ था अभागा ? तभी रोकता इसे। मृत सिंह के शव पर दाँत मारने वाला जम्बुक ! तब कहाँ था तू ? अभिमन्यु . अभिमन्यु . हाय पुत्र ! तो तुम चले गये। दिन भर सूर्य के तेज से दप्त रहकर तुम अस्त हो गये ? उठो पुत्र ..उठो तुमसे मेरा अब वैर नहीं है।

द्रोणाचार्य वसुसेन !

कर्ण हाँ आचार्य !

द्रोणाचार्य देख रहे हो यह दृश्य ?

कर्ण आँखें देख रही है पर मन सहसा विश्वास नहीं करता ! अभिमन्यु का शीश कुरुराज की गोद में है।

द्रोणाचार्य सुभद्रा का यह पुत्र अजातशत्रु था। दिन भर वीरों का वध कर स्वयं भी उसी गति को प्राप्त हुआ। किसी के प्रति इसके मन में वैर नहीं आया। पल भर को भी इसकी आँखें लाल न हुईं। भवें टेढ़ी न पड़ीं ! चलो सुयोधन को सम्हालो। कल की चिन्ता करो। सृष्टि का कोई चिह्न कल अर्जुन छोड़ेगा ?

(दोनों का प्रस्थान। पर्दा गिरता है)

# तीसरा अंक

(संध्या। आकाश में पक्षियों की ध्वनि। दूर पर रथों के चलने की ध्वनि। कभी-कभी शंख बज उठते हैं, जिनकी ध्वनि सब दिशाओं से आ रही है। कन्धे में धनुष, पीठ पर तूण और अन्य शस्त्रों को यथा-स्थान धारण किये योद्धा दुःख और चिन्ता के भार से दबे चले जा रहे हैं। युधिष्ठिर शिविर द्वार के बाहर खड़े होकर सामने की ओर देख रहे हैं। शिविर के पीछे की ओर नारियाँ रो रही हैं, दूर से आती विलाप की ध्वनि सारे वातावरण को शोक से भर रही है। आँधी में पड़े वृक्ष से धर्मराज रह-रह कर काँप उठते हैं। शिविर के भीतर बैठने के आसन भद्रपीठ सब देख पड़ते हैं। दोनों हाथों से धर्मराज अपने सिर का बाल खींचने लगते हैं।)

धृष्टद्युम्न (दायें से प्रवेश कर युधिष्ठिर के हाथ पकड़ लेता है) शोक से पराजित न हों धर्मराज! (एक ओर हाथ उठाकर) शत्रु चर वहीं खड़े हैं। अपने हाथों सिर के बाल नोचते धर्मराज के चित्र आज रात में बन जायेंगे और कल प्रातः शत्रुओं के सुख और विनोद के कारण बनेंगे।

युधिष्ठिर धर्मराज तुम बनो द्रुपदपुत्र! इस नाम से मुझ पापी का अब सम्बोधन न करो... (गहरी साँस लेते हैं) चलो

जाओ तुम यहाँ से.. (सामने की ओर हाथ उठाकर)
कपिध्वज गरुड़-सा आकाश चीरता वह आ रहा है।
अर्जुन के सामने पहले मैं पड़ूँ। समझ रहे हो!

धृष्टद्युम्न आप धीर न रह सकेंगे धर्मराज!

युधिष्ठिर हाय रे! कौन धीर है आज? धरती, आकाश .. सूर्य भी डूबने के पहले अधीर था.. अस्ताचल के ऊपर...दया करो पांचाल कुमार! मना करो अपनी बहन को...और सब रोयें पर वह नहीं। द्रौपदी का रुदन विधाता के परिहास-सा मेरे हृदय को चीर रहा है। (दोनों हाथों में छाती दबा लेते हैं)

धृष्टद्युम्न कृष्णा यहीं शिविर के कोने में अभी..

युधिष्ठिर तब यमलोक में भी यह मुझे चैन न लेने देगी। कहाँ है? कह दूँ यह दिन उसके उत्सव आनन्द का है। उसके मन का हो गया। नाचे, गाये, दान दे.. प्रसाधन और शृङ्गार से अप्सरियों की . (शिविर की ओर बढ़ते हैं, धृष्टद्युम्न पकड़ लेता है)

धृष्टद्युम्न बहन का अनादर अपनी आँखों में नहीं देखूँगा धर्मराज...

युधिष्ठिर तब शस्त्र लो। अर्जुन के आने के पहले मुझे भी वहीं भेज दो जहाँ अभिमन्यु गया है। हम पाँच पुरुष तुम्हारी बहन को अंकुश में न रख सके, उसके अंकुश के नीचे हमारे सिर सदैव झुके रहे . उसी का फल यह युद्ध है। भीमसेन की गदा और अर्जुन का गाण्डीव...

धृष्टद्युम्न शोक में विवेक छूट जाता है धर्मराज! तुम्हारा दोष नहीं है।

युधिष्ठिर मत कहो मुझे धर्मराज ..सुन लो ..पिता और माता के वध का पाप, ब्राह्मण और गुरु के वध का पाप लगे तुम्हें जो तुम फिर मुझे इस शब्द से सम्बोधित करो।

धृष्टद्युम्न ब्राह्मण वध का पाप तो मेरे भाग्य में है। द्रोणाचार्य के वध के हेतु जब मेरा जन्म हुआ।

द्रौपदी (प्रवेश कर) कृष्णा के कारण नहीं आर्यपुत्र! यह युद्ध कृष्ण के कारण हुआ। मैं उनके हाथ की कठपुतली रही हूँ। पुरुष पाप से चाहे न डरे, शपथ की चिन्ता उसे न हो ..पर नारी पाप और शपथ उसकी दो आँखें हैं जिनसे वह जगत को देखती है।

युधिष्ठिर अन्तःपुर की देवियों को सम्हालो महादेवी! पुत्रवधू उत्तरा को और अपनी बहन सुभद्रा को। यह समय तुम्हारे आनन्द मनाने का है रोने का नहीं।

द्रौपदी मेरे आँसू भी आनन्द के हैं आर्यपुत्र! मेरा पुत्र शिवलोक में गया है, दिन भर सूर्य की भाँति रणभूमि को तपाकर, सौ-सौ रथियों को सूखे पत्ते-सा उड़ाकर.. हमारा नाम जितना अभिमन्यु के कारण चलेगा उतना अपने कारण नहीं। मनुष्यों में जो देव हैं उसके युद्ध को विस्मय में देखते रहे हैं, देवता भी देखते रहे होंगे, आँख वालों ने देखा होगा।

युधिष्ठिर अर्जुन के सामने तुम न पडो देवी! (कातर दृष्टि)

द्रौपदी क्यों क्या होगा? पुत्र शोक में आर्यपुत्र मेरा वध कर

देंगे ? कोई बात नहीं जो यह भी हो जाय। पुत्र के निकट मैं फिर भी माता रहूँगी।

युधिष्ठिर यह बात सुभद्रा कह सकेगी जो नौ मास उसे अपने उदर में ढोती रही...जिसने उसे जन्म दिया। तुम राजनीति की बात करो देवी ! माता की बात तुम क्या जानो।

द्रौपदी धिक्कार है आर्यपुत्र तब मेरे जन्म को। (दोनों हाथों में सिर थाम कर चक्र की गति में घूम कर बैठ जाती है।)

धृष्टद्युम्न कृष्णा पर यह आघात धर्मराज ! इतना दारुण ! इसके सन्तानहीन होने पर तुम व्यंग कर रहे हो ? किस पुत्र के पिता तुम हो ? छी.. छी...

युधिष्ठिर प्रकृति का व्यंग है यह भद्र ! मेरा नहीं। पुरुष मन और प्राण से दूसरे की सन्तति को अपना बना लेता है, पर नारी के लिये यह बात कहीं नहीं सुनी गई। अपनी देह की सीमा के बाहर नारी नहीं जाती। देख लिया भद्र ! तुम्हारी बहन के आँसू भी राजनीति के हैं, अभिमन्यु का अनुराग उसमें भी नहीं बहा।

द्रौपदी मेरे हृदय का अनुराग उसी क्षण सूख गया आर्यपुत्र ! जिस क्षण दुःशासन ने मेरा केश खींचा था जब मेरे कन्धे का वस्त्र नीचे धरती पर गिरा था...और सुनोगे जब मेरी आधी देह नंगी हो गई थी !

युधिष्ठिर हाँ घर आये अतिथि का आदर जो तुमने इन्द्रप्रस्थ में किया था, जिस आदर के प्रतिकार के लिए कुरुभवन में द्यूत

रचा गया, हमारी हार का बदला जहाँ तुम अपनी जीभ से लेने लगी...एक-एक साँस में जहाँ सौ-सौ अपशब्द तुमने अन्धे चचा धृतराष्ट्र के लिए कहे। तुम्हारे अपशब्दों में...वह भी पिता के प्रति.. दुःशासन की क्या दशा हुई होगी? शत्रु के आचरण पर शत्रुभावना से मुक्त होकर ही विचार हो सकेगा।

धृष्टद्युम्न जो बीत गया उसे अब लौटाकर क्या होगा?

युधिष्ठिर पर उसका फल.. बिना उसके भोगे त्राण भी कहाँ है! कर्म के बन्धन फल के भोग पर ही कटते हैं...कट रहे हैं और कटेंगे। जो चला गया...आज जो है, और जो कभी आयेगा परस्पर ऐसे घने गहरे संबंधसूत्र में बँधे हैं कि उन्हें कहीं किसी जगह काटकर अलग नहीं कर सकते।

द्रौपदी होनी न रुकी। रोककर हार गई मैं पर पुत्र न रुका, सब कुछ जो मेरे किये होता रहा तो उसे रुक जाना था क्यों गया वह युद्ध में? मेरा बल उस पर क्यों न चला?

युधिष्ठिर जहाँ बुद्धि काम नहीं करती.. पौरुष थक जाता है वहाँ अन्त में होनहार की आड ही काम देती है। चलो तुम भीतर अर्जुन तुम्हें यहाँ न देखे।

द्रौपदी तो मैं जन्म भर के लिए आर्यपुत्र की आँखों से दूर हो जाऊँ!

युधिष्ठिर तुम्हें देखकर परन्तप का शोक कहीं उसी के लिए घातक न बने, इसी डर से देवी! तुम मेरा अनुरोध मानकर

चली जाओ। पुत्रवधू को देखो कहीं वह अपने साथ इस कुल के भावी दीपक को भी न बुझा दे।

द्रौपदी किसी जन्म में हमने कोई अपराध किया था जिसका फल वह पुत्र बनकर दे गया। कोई देवता...कोई ऋषि था वह जो शापभ्रष्ट होकर इस योनि में आया था और इतने ही दिनों में मुक्त हो गया। रणयात्रा के पहले ही इस ओर से वह हमें निर्भय कर गया।

युधिष्ठिर ऐं...नहीं समझ रहा हूँ मैं क्या कह रही हो?

द्रौपदी पुत्रबधू को वह इसके लिये बाँध गया। उसके पुत्र को जब तक विराटपुत्री की देह से काम रहेगा तब तक वह अपने शरीर की रक्षा करेगी।

युधिष्ठिर बधू मान गई यह बात?

द्रौपदी हाँ आर्यपुत्र! मान गई पूरे सुख और सन्तोष से। संकट की उस घडी में भी पुत्र उसे सब ओर से सुखी और प्रसन्न करके गया। किसी को विश्वास न होगा उसकी आँखें बरसने की बात कौन कहे भीगी भी नहीं।

युधिष्ठिर (विस्मय में) रो नही रही है वह तब...

द्रौपदी उसकी जो गति है कही नहीं जा सकती आर्यपुत्र! शब्द नही हैं जो वह चित्र उतार सकें। जैसे किसी दूसरे लोक से वह यहाँ आ गई, इस धरती से...इसके जीवों से जिसका कोई परिचय नहीं। कोई नहीं है जिसे वह पहले से जानती पहचानती हो। आँख उठाकर उसकी ओर देखा नहीं जाता।

धृष्टद्युम्न न कहो बहन! छोड़ दो भगवान् के भरोसे। आँसू निकल जाने पर भीतर की आग बुझती है...उसका इस तरह शिला-सी कठोर बन जाना किसी बड़े संकट की सूचना है। (सामने देखकर) यह कपिध्वज आ गया हम लोग यहीं रहेंगे?

युधिष्ठिर हे देव! भीमसेन अभी नहीं आया। पुत्र का शव भी अभी तक न आ सका।

सात्यकी (नेपथ्य में) शिविर के द्वार पर नहीं...आते ही गुरु की दृष्टि मृतपुत्र पर न पड़े। शोक का वेग जब उनका मन्द पड़े पौरुष और ओज के भाव जब उनके भीतर जाग उठें तब वे देखें!

भीमसेन (नेपथ्य में) सच कह रहे हो भद्र! यही ठीक होगा।

द्रौपदी जा रही हूँ मैं आर्यपुत्र! पर जो वे कहीं अपने अपकार पर तुलें तब मैं न रुकूँगी। उस समय जो कहीं उन्हें मूर्च्छा आये या वे अपने शस्त्र से अपना ही घात करना चाहें... (द्रौपदी का प्रस्थान शिविर के दायें रथ की ध्वनि होती है।)

धृष्टद्युम्न रथ वहीं रुक गया धर्मराज! जैसे किरीटी किसी की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

युधिष्ठिर संध्या समय बराबर अभिमन्यु के सहारे जो रथ से उतरता रहा, पुत्र के मोहक मुख को देखकर जो समर के श्रम को भूलता रहा, वह आज भी उसकी बाट जोह रहा है पर वह अब कहाँ?

धृष्टद्युम्न  वासुदेव उन्हें हाथ पकड़कर खींच रहे हैं पर वे तो रथ से उतरते नहीं।

युधिष्ठिर  अब क्या होगा भद्र! कौन जाय वहाँ; किसके मुख से यह बात निकलेगी कि अभिमन्यु इस लोक में नहीं है।

धृष्टद्युम्न  उतर तो गये पर जैसे आगे चलना ही नहीं चाहते। सब ओर घूम-घूमकर देख रहे हैं जैसे कुछ जानना चाहते हैं...वासुदेव इधर चलने को संकेत कर रहे हैं पर मेरु से अडिग होकर वे हिलते ही नहीं।

(शिविर के भीतर से सात्यकी और भीमसेन का प्रवेश)

भीमसेन  भीतर आ जायँ तात! अर्जुन के सामने आज हममें किसी का खड़ा रह जाना विंध्य का समुद्र में तैरना होगा।

युधिष्ठिर  (धृष्टद्युम्न से) चलो भद्र! तुम भीतर। मुझे यहीं रहने दो।

भीमसेन  हठ नहीं। अर्जुन हम सब को एक साथ देखें और हम परन्तप के शोक और क्रोध में एक साथ डूबें या भस्म हो जायँ।

(युधिष्ठिर का हाथ पकड़ कर शिविर में ले जाता है)

अर्जुन  (नेपथ्य में) ठहरो मित्र देखने तो दो। क्या मेरी सेना, मेरे बन्धु, सखा सहायक सब आज एक साथ जूझ मरे? कहीं तो कोई नहीं दिखाई पड़ रहा। यह सारे शिविर जैसे सूने हैं।

कृष्ण  (नेपथ्य में) धर्मराज कुशल में हैं कोई बात नहीं।

अर्जुन (नेपथ्य में) तब किसका कुशल नहीं है, किसके शोक में मेरे पक्ष के वीर शिविरों में अचेत पड़े हैं? न कहीं चारण गा रहे हैं न वैतालिक। विजय के मंत्र भी कहीं नहीं सुनाई पड़ते। पुत्रवधू की वीणा आज क्यों मौन है? वासुदेव!

कृष्ण (नेपथ्य में) हाँ कहो...

अर्जुन (नेपथ्य में) कोई घोर अनिष्ट हुआ है मित्र! कहाँ है आज अभिमन्यु, आज मुझे रथ से उतारने क्यों नहीं आया? एक-एक डग आगे बढ़ने में लग रहा है जैसे मैं अग्नि के समुद्र में प्रवेश कर रहा हूँ.. दिशाएँ जल रही हैं। ऐं... सारे शिविर धू धू कर जल रहे हैं जैसे धरती और आकाश जल रहे हैं। छोड़ दो मुझे यहीं...देख लो ..जान लो पहले तब मुझे बुलाओ।

कृष्ण (नेपथ्य में) चाहे जो हो सुख-दुख, जय-पराजय, जीवन और मृत्यु इन सब में लोक-विजयी कुन्तीपुत्र अर्जुन को अधीर नहीं होना है। सम बुद्धि और अनासक्त वृत्ति से जो आ जाये स्वीकार करना है। तुम्हारे अधीर होने का अर्थ होगा पृथ्वी की धीरता का मिट जाना। लोक में जो कुछ भी महान है, एक भी न टिकेगा तब ..

अर्जुन कुम्हार के चक्के-सी नीचे को धरती घूम रही है।
(कृष्ण और अर्जुन का शिविर के सामने प्रवेश। दोनों एक साथ ही शिविर में देखते हैं)

अर्जुन (उद्वेग में काँपते शब्द) नहीं है अभिमन्यु ..यहाँ भी नहीं है वासुदेव !

कृष्ण भीतर चलो भद्र ! पूछें कहाँ है वह ।

(अर्जुन को दृढ़ता से पकड़कर कृष्ण का शिविर में प्रवेश) लक्षण तो बुरे लग रहे हैं । धर्मराज, भीमसेन, सात्यकी धृष्टद्युम्न और भी जो यहाँ बैठे हैं जैसे सभी पत्थर की मूर्तियों से अचल बने हैं । अभिमन्यु कहाँ है धर्मराज ?

अर्जुन (भरे कंठ से) अरे तुम सब बोलते क्यों नहीं ? देख लो वासुदेव ! नहीं हैं पुत्र अब, नहीं तो इन सब की यह दशा नहीं होती । चला गया...चला गया...

कृष्ण हैं.. हैं...क्या हो रहा है तुम्हें ? युद्ध के आरम्भ में जो मोह तुम्हें हुआ था उसी में फिर डूब रहे हो ? धीरज धरो पूछने दो मुझे । नहीं तो फिर अभिमन्यु की बात छोडकर जीव और कर्म के गुण, धर्म, और स्वभाव मुझे फिर कहने पडेंगे ।

(अर्जुन का सिर कृष्ण के कन्धे पर टिक जाता है)

युधिष्ठिर द्रोणाचार्य के चक्रव्यूह में पुत्र का निधन हुआ वासुदेव ! हम अभागों की मृत्यु न आई, कुल का दीपक बुझ गया !

अर्जुन (तनकर खड़ा होते हुए कठोर स्वर में) इतने वीरों के सामने अभिमन्यु का वध हुआ मान लू मैं यह ?..है यह बात विश्वास की .?

धृष्टद्युम्न जयद्रथ ने अचल पर्वत की तरह हमें व्यूह द्वार पर रोक दिया। न जा सके हम भीतर। लाख-लाख चेष्टा कर हार गये।

अर्जुन मतिभ्रम हो गया है तुम्हें। द्रोणाचार्य ने रोका जयद्रथ ने नहीं।

भीमसेन नहीं भाई! द्वार रक्षक जयद्रथ था। मेरुशृंग पर वायु का बल जैसे नहीं चलता. तट के पर्वत से समुद्र की लहरें जैसे हार जाती है...न हिला. हमारे हिलाये जयद्रथ न हिला।

सात्यकी जहाँ-जहाँ बाहर से हमने मार्ग बनाया और भीतर से अपराजित अभिमन्यु ने. जयद्रथ सब कहीं पहुँचकर मार्ग रोक देता रहा। दिन भर हम यही करते रहे। पर हमारी एक नहीं चली।

अर्जुन जयद्रथ किस माया से...किस बल से...किस वरदान से? तुम सब मिलकर मेरे पुत्र की रक्षा न कर सके। तुम्हारे शस्त्र शृंगार के लिये है। जाल में फँसे तरुण सिंह की तरह पुत्र मारा गया और तुम सब जी रहे हो? मरते भी नहीं बना तुमसे? कह दो जयद्रथ ने मरने भी नहीं दिया। तुम्हारा विधाता आज वही बन गया। विश्वास नहीं हो रहा है मुझे ..

युधिष्ठिर जो कभी सुना नहीं गया था वही आँखों से देखा गया। जैसे भगवान भूतनाथ जयद्रथ का रूप धर कर लड़ रहे थे।

अर्जुन अरे! ये सब प्रलाप कर रहे हैं वासुदेव! एक ही साथ

सबको मतिभ्रम हो रहा है। आचार्य द्रोण, कर्ण, गुरुपुत्र की बात होती तो पल भर को विश्वास भी होता . पर यह जयद्रथ दो हाथों से समुद्र कैसे पार कर गया? इनके हीन पौरुष से पुत्र का वध हुआ और ये सब मिल जयद्रथ की प्रशस्ति गा रहे हैं। जिसका नाम आज तक रथियों में नही लिया गया, महारथी वह कैसे बन गया और वह भी एक साथ इतने वीरों को हराने वाला।

(सहसा अर्जुन का शरीर काँपने लगता है। सिर कृष्ण के कंधे पर झुक जाता है।)

कृष्ण अरे! तो तुम्हें मूर्छा आ रही है। कौन किसका पुत्र होता है और कौन किसका पिता। जगत् के इस झूठे नाते में तुम जैसा मनस्वी . है.. हैं सम्भालो भीमसेन यह तो अचेत हो गये।

(कृष्ण अर्जुन को कस कर पकड़ लेते हैं। भीमसेन कंधे से धनुष और कटिबन्ध मे तूणीर निकाल लेता है। कृष्ण अर्जुन को लिए बैठ जाते हैं। द्रौपदी भीतरी द्वार से प्रवेश कर अर्जुन का सिर अपनी जाँघ पर ले लेती हैं। युधिष्टिर, सात्यकी, धृष्ठद्युम्न उद्वेग में आगे बढ़कर अर्जुन का मुख देखने लगते हैं)

द्रौपदी (भरे कण्ठ से) आर्यपुत्र! समर के इस अगाध समुद्र में जिसका ओर-छोर नहीं, इस झाँझर नैया को तुम भी छोड रहे हो।

अर्जुन (तन्द्रा के स्वर में) अ.. भि...म...न्यु...

कृष्ण  कोई कुछ न बोले। परन्तप की मूर्छा से इनके जीवन का संकट टल गया। (थोड़ी देर सब मौन रहते हैं)

अर्जुन  (उसी दशा में) अंधकार ..सीमाहीन अंधकार...

द्रौपदी  हाय! नाथ!

अर्जुन  (चौंककर) कौन पाञ्चाली! तुम हाय कर रही हो किस लिए?

कृष्ण  अभिमन्यु का ध्यान करो भद्र! कहाँ है वह इस समय? कुछ देख रहे हो।

(अर्जुन के ललाट पर दायाँ हाथ रख देते हैं)

अर्जुन  (तन्द्रा में) भगवान् विष्णु की मुसकान का अमृत पी रहा है वह। माता लक्ष्मी अपने कण्ठ की माला उसके कण्ठ में डाल रही है।

(क्षण भर सब ओर सन्नाटा)

अर्जुन  (चेत में आकर द्रौपदी को देखते हुए) रो रही हो तुम पाञ्चाली! अभिमन्यु हारा नहीं। वीर की सबसे महान् गति मिली उसे। तुम्हारे आँसू जो मेरे मुख पर गिरे काल अग्नि बनकर शत्रुओं को भस्म करेंगे। (उत्साह में उठते हुए) सच है धर्मराज यह बात?

युधिष्ठिर  इस नाम से मुझे अब घृणा हो गई है बन्धु! कान में यह जहाँ पड़ा कि सारे शरीर में काल सर्प का विष व्याप्त हो जाता है।

अर्जुन  जो पूछ रहा हूँ वह कहो तात! अभिमन्यु के वध का कारण जयद्रथ है?

युधिष्ठिर शंकर के वरदान से उसने हम सबको व्यूह के बाहर रोक दिया। शत्रुओं के समुद्र मे पुत्र अकेला डूबा।

अर्जुन ( वीरासन पर बैठकर) द्रोणाचार्य, कर्ण और अश्वत्थामा से उसका पराक्रम अधिक था?

युधिष्ठिर प्रलय का रुद्र बना था वह आज। उसके ललाट के त्रिपुण्ड से रुद्र का तेज निकलकर दिशाएँ जला रहा था!

अर्जुन तब तो उसके आगे आज मेरी भी न चलती . पुत्र की रक्षा मुझसे भी न हुई होती।

युधिष्ठिर तुम्हारे रहते पुत्र व्यूह मे क्यों जाता और भगवान भूतभावन के वरदान में तुम्हारे जीतने की बात भी नही थी। बस अकेले तुम्हें छोडकर जयद्रथ त्रिलोकजयी बनने का वरदान पा चुका है।

अर्जुन इसीलिए शत्रु मुझे आज नित्य से दो योजन और दूर ले गये, जिससे इस प्रलय की सूचना मुझे न मिले। क्या होगा वासुदेव अब!

कृष्ण अपने अंतःकरण से पूछो भद्र! जो स्वर वहाँ गूंज रहा है.. जिस कर्म का आग्रह है...

अर्जुन (संकल्प के स्वर मे) जयद्रथ के कारण पुत्र का बध हुआ, इस यज्ञ का प्रधान होता वही है, तुम भी यह मानते हो सात्यकी?

सात्यकी (भरे कण्ठ से) जयद्रथ से बड़ा कारण मै स्वय अपने को मानता हूँ? आपसे अधूरी विद्या लेकर जो वीर न बन गया होता; हिंसा बुद्धि से समय के पहले ही आततायी

बनने का मोह रोक पाता तब तो चक्रव्यूह की कला मुझे आ गई होती। आपने मना किया था तात! तब नहीं सूझा, अब सूझ रहा है। प्रियदर्शन अभिमन्यु के वध का पाप मेरे सिर है। (वेग से उठकर अर्जुन के आगे धरती पर सिर रख देता है)

अर्जुन (सात्यकी के सिर पर दोनों हाथ धरते हुए) मेरे हृदय का आधा शोक मिट गया सात्यकी! इस कार्य मे हम दोनों समान अपराधी हैं...शिष्य के आवेग को गुरु रोके ..अधूरी विद्या न दे। तब तक रोके रहे जब तक टीक-ठीक अपने साँचे में सब ओर से न ढाल दे। (भीमसेन की ओर देखकर) चारण कहाँ है तात!

भीमसेन होगा कहीं, बैठा होगा कहीं छिपकर जहाँ उसे कोई देख न ले।

अर्जुन ऐसा क्यों तात?

भीमसेन शोक के समुद्र में उसका काम ही क्या है?

अर्जुन यश और कीर्ति के मोती निकालेगा वह इसमें डूबकर। पुत्र की चिता में आग देने के पहले मुझे उसका गान सुन लेना है जिसमें विष्णु लोकवासी अभिमन्यु के रूप का चित्रण हो, भगवान् विष्णु के अनुराग में जो रँगा हो, माता लक्ष्मी के हाथों की माला जिसके कण्ठ मे हो!

भीमसेन (उठकर) अभी ले आता हूँ मैं उसे!

अर्जुन पुत्र की देह तो ले आयें पहले। चलो मेरे साथ समर-भूमि..वासुदेव! इस कर्म में सारथी आप न बनें।

कृष्ण समुद्र की लहरें जब बढ़कर आकाश चूम रही हों उस समय सार्थवाह नहीं बदलते।

धृष्टद्युम्न हो चुका है यह काम।

अर्जुन (चारों ओर देखकर) कहीं नहीं देख रहा हूँ मैं ..

द्रौपदी पुत्र की देह जैसे यज्ञ की बुझी अग्नि हो। (शिविर की दूसरी ओर संकेत कर) यहाँ धरी है।

युधिष्ठिर पुत्र के गिरते ही द्रोण ने युद्ध बन्द कर दिया। जयद्रथ द्वार से रथ हटाकर विश्राम करने लगा।

सात्यकी (उठकर खड़े होते हुए) मुझे कहने दें धर्मराज! आप वहाँ नहीं थे। (अर्जुन की ओर देखकर) जिस समय जयद्रथ आनन्द में रथ से उतरकर नाचने लगा.. शत्रुओं के शंख आकाश फाड़ने लगे आचार्य ने मुझे अपने निकट आने का संकेत किया।

अर्जुन (उत्सुक होकर) हाँ तब

सात्यकी पास जाने पर कहने लगे पुत्र का शव पिता को न ले जाना पड़े।

अर्जुन इसमें तुम्हें आचार्य की सहायता मिल गई। कुछ और कहा उन्होंने...

सात्यकी कहा था कह देना अपने गुरु से शोक न करेंगे। उनका पुत्र व्यूह के गर्भ मण्डल में पहुँच गया था।

अर्जुन आचार्य के शब्द हैं ये?

सात्यकी हाँ.

अर्जुन (विस्मय में) वासुदेव ! सात चक्रमण्डल पार कर गर्भ-मण्डल में पहुँच गया था। आचार्य ने अपने मुँह स्वीकार कर लिया। क्यों सात्यकी ठीक है ?

सात्यकी कानों ने जो मुझे धोखा न दिया, सुनने में मुझसे भूल न हुई आचार्य ने यही कहा था। विराग के भाव उनके अंग-अंग से चूने लगे थे। क्या-क्या कहते रहे वे अभिमन्यु के विक्रम से देवता विस्मित हुए। मनुष्यों में जो देवता हैं उनकी बात कौन कहे। इस युद्ध की दो घटनाएँ कभी नहीं मिटेंगी। पितामह की बाण शय्या, और चक्रव्यूह में अकेले अभिमन्यु का युद्ध।

अर्जुन आचार्य की कही बातें कह रहे हो तुम यह सब...

सात्यकी हाँ तात ! उनके मुख पर जो भाव थे विराग और संतोष का रग जो उन पर चढ़ा था वह मैं नहीं दे पा रहा हूं ?

अर्जुन (उत्साह में) तब कोई चिन्ता नहीं वासुदेव ! अभिमन्यु यश के शरीर में जीवित है, जीवित रहेगा, जिसके विक्रम से आचार्य विस्मित हैं। मृत्यु के वश में वह नहीं है। (द्रौपदी से) पुत्र वधू का शृङ्गार करो देवी ! पुत्र उसकी राह देख रहा होगा।

द्रौपदी शिव शिव

अर्जुन ऐं क्या कह रही हो अभी वह जीना चाहती है ?

द्रौपदी अंधकार की इस कालरात्रि में प्रकाश की यही एक रेखा

हे आर्यपुत्र ! तुम्हारी पुत्रवधू कुल के कल्याण के लिए अभिमन्यु का तेज अपने उदर मे ढो रही है ।

अर्जुन (गद्गद कंठ से) जय बोलो वासुदेव ! सब एक साथ जय बोलो 'धर्मराज की जय' (सब एक साथ जय बोलते है ।)

कृष्ण प्रलय के केन्द्र मे नई सृष्टि का अंकुर फूटा है ..अब तो इस नाम से तुम्हे घृणा न होगी धर्मराज ?

युधिष्ठिर आशा के इसी तन्तु पर अब हमको जीना है । पुत्र अपना प्रतिनिधि छोड गया है । हमारे पुण्य अब भी शेष हैं ।

कृष्ण शिविर के बाहर निकलकर शख फूको भीमसेन ! जिसकी ध्वनि मे चारण जहाँ कही हो खीचकर चला आये । वैरी के आनन्द का स्रोत सूख जाय ।

अर्जुन मेरे मन मे भी यही आया था ।
(भीमसेन शिविर के बाहर निकलकर शंख फूँकता है । जिसकी ध्वनि आकाश में देर तक गूँजती रहती है ।)

अर्जुन सुने वासुदेव ! धर्मराज सुनें ! मेरे दल के सभी वीर सुने । धरती सुने, आकाश सुने, आकाश के देवता सुनें जो मैं कल सध्या तक जयद्रथ का वध न करूँ तो अग्नि मे जलकर मर जाऊँ । सूर्य पिड जब तक आकाश में रहेगा, जयद्रथ को यह लोक छोडना पडेगा । समर भूमि से जो कहीं दूर जाकर वह छिप न गया, और छिपेगा भी कहाँ ? आकाश मे मेरे बाण गरुड बनकर उसका ग्रास करेगे. पाताल मे सर्प बनकर उसे डसेगे ।

कृष्ण (आनन्द के वेग में) धन्य हो पार्थ ! तुमने अपने अनुरूप प्रतिज्ञा की है। (सब ओर से साधुवाद सुनाई पड़ता है)

अर्जुन धर्मराज के चरणों की शपथ है मुझे, तुम्हारे स्नेह की शपथ है वासुदेव ! इन्द्र और यम, शंकर और विष्णु, कल उसे मेरे क्रोध से न बचा सकेंगे।

युधिष्ठिर या वासुदेव की शरण छोड़कर उसकी रक्षा अब इस लोक में कहीं नहीं है।

कृष्ण बस हो गया यही होगा कल।

अर्जुन और जो मेरे भाग्य से इस प्रतिज्ञा की पूर्ति न हो, अग्नि में जलकर मुझे मरना पड़े। तब मैं उस कुम्भीपाक, सूचीमुख, और रौरव में पड़ूँ; जहाँ संसार के घोर पापी जाते हैं। माता और पिता की हत्या करनेवाले, गुरु और ब्राह्मण का वध करनेवाले, गुरुपत्नी से गमन करने-वाले, साधु निन्दक, और पर स्त्री की कामना करनेवाले जिस लोक में जाते हैं मुझे भी वही गति मिले।

युधिष्ठिर (आनन्द और उत्साह में भरकर) तुम्हारी इच्छा से कल प्रलय होगी, परन्तप ! जयद्रथ को तुम वैसे ही तोड़ फेंकोगे जैसे गन्धराज कमलदण्ड को बिना प्रयास के उखाड़ फेंकता है।

अर्जुन (दोनों हाथ जोड़कर) धर्मराज का धर्म मेरा कवच होगा। वासुदेव के प्रेम का अमृत पीकर शत्रुओं के दल में वैसे ही प्रवेश करूँगा तात ! जैसे आकाश में सूर्य

प्रवेश करता है, बिना किसी बाधा के, बिना किसी भय के।

(युधिष्ठिर आदि सभी शंख फूँकते हैं। धरती आकाश एक साथ ही हिल उठते हैं। चारण प्रवेश कर प्रणाम करता है)

कृष्ण आ गये तुम चारण?

चारण हाँ देव! मै आ गया।

कृष्ण अपनी आँखो से देखे धरती का विक्रम तुम गाते रहे हो। स्वर्गवासी अभिमन्यु का विक्रम गा सकोगे?

चारण सरस्वती के घेरे के बाहर स्वर्ग भी नहीं है देव! मुझे गाना क्या होगा? भाव और रूप का संकेत आप दे दें। उसे मै गीत में ढाल लूँगा।

कृष्ण क्या रहे चारण के गीत मे पार्थ! बता दो इसे।

अर्जुन पुत्र की चिता में आग देते समय मन्त्रों के साथ चारण का गीत मेरे कानो में पडे बस यही इतनी मेरी कामना है। धर्मराज के साथ भाव और विषय का निश्चय तुम कर लो मित्र!

कृष्ण उसका निश्चय तो तुम्हारी मूर्च्छा मे ही हो गया था, भगवान् विष्णु की मुसकान का अमृत अभिमन्यु पी रहा है, माता लक्ष्मी के हाथ की माला उसके कण्ठ में है। सुन लिया चारण तुमने।

चारण हाँ देव! सुन लिया। फिर भी धर्मराज और आपकी प्रेरणा मे मेरे हृदय का कमल खिलेगा।

अर्जुन — वासुदेव और धर्मराज के साथ तुम यहाँ रह जाओ। धृष्टद्युम्न और सात्यकी चिता की सामग्री में लगें। मैं पुत्र के वीर रूप का दर्शन करूँगा।

कृष्ण — मुझसे पहले तुम नहीं जा सकते हो।

अर्जुन — तब चलें कौन जाने वहाँ मेरे मन की गति क्या हो?

कृष्ण — शंकर के त्रिशूल, इन्द्र के वज्र, यम के दण्ड के घात से पुत्रघात की तुलना नहीं हो सकती भद्र! इस सृष्टि में इससे बड़ा घात किसी शस्त्र का कभी सुना नहीं गया। धर्मराज के साथ तुम तब तक विचार करो चारण! शिविर के दक्षिण जहाँ से रणभूमि देख पड़ती है तुम लोग भी अपने काम में लग जाओ सात्यकी!

(अर्जुन और कृष्ण को छोड़कर सब का प्रस्थान)

अर्जुन — भोर के चन्द्रमा-सी पुत्र की माता चली आ रही हैं। क्या कहना होगा वासुदेव!

कृष्ण — भाई के सामने बहन का शोक पूर्णिमा के समुद्र-सा बढ़ता है। तुम रोको उसे मेरे वश की बात यह नहीं है।

(आँधी मे टूटी हुई लता-सी सुभद्रा का प्रवेश)

सुभद्रा — (रुँधे कण्ठ से) पुत्र का मुख देखो आर्यपुत्र! (कृष्ण की ओर देखकर) लुट गई लुट गई, मैं भाई तुम्हारे रहते।

अर्जुन — वीर पुत्र शोक का कारण नहीं होता देवी! जन्म भर की तपस्या का फल जो नहीं मिलता तुम्हारे पुत्र को वही मिला। सूर्यमण्डल के पार अक्षय स्वर्ग में राजर्षियों की मण्डली पारकर विष्णु के अंक में तुम्हारे पुत्र का शीश

है...माता लक्ष्मी के हाथ की माला उसके शीश में पड़ रही है। इससे बड़े किस दूसरे फल की कामना कर रही हो तुम?

(सुभद्रा अवाक्-सी खड़ी रहती है)

कृष्ण — माता की सबसे बड़ी कामना क्या है बहन!

सुभद्रा — वीर पुत्र को जन्म देना भाई।

कृष्ण — वह फल तुम्हें मिल गया। तन के स्वार्थ को मिटाकर मन के गौरव का बोध करो. है कोई दूसरी माता जिसका भाग्य तुम्हारे सामने खड़ा हो? सुना तुमने अर्जुन कल संध्या तक जयद्रथ का वध करेंगे।

सुभद्रा — (काँपते कण्ठ से) सो सुन चुकी।

कृष्ण — पति का संकल्प पूरा हो इसके लिए तुम्हे इष्टदेव की पूजा करनी है। कुल की भावी आशा जिस पुत्रवधू के साथ लगी है उसकी रक्षा करनी है। शोक में यह सब तुम छोड़ न सकोगी, समझ रही हो।

सुभद्रा — अभी इतना भार मुझ पर है।

अर्जुन — और इसे जब तक देह में साँस है तुम्हें ढोना भी है देवी! चलो तुम पुत्रवधू के पास। जब तक मैं वहाँ आऊँ कुछ ऐसा करो कि उसके मन की गति सँभल जाय और उसके पास क्षण भर खड़ा रहने का साहस मुझे हो।

(दोनों की ओर कातर दृष्टि से देखकर सुभद्रा का प्रस्थान। कृष्ण के साथ अर्जुन शिविर के पीछे निकल

जाते हैं। बाहरी द्वार से सुमित्र प्रवेश कर रुक जाता है।

कृष्ण (नेपथ्य में) वीर की देह पर आघात नहीं गिनते। इसे अपने पुत्र की देह न मानकर सोया हुआ वीर रस या फूला हुआ किंशुक वृक्ष मानो।

अर्जुन यही मुख है, यही ललाट, यही आखें, नाक और अधर केश, बाहें और वक्षस्थल सब वही जिसे देखते मैं अघाता न था। जिसे जानता था जन्म-जन्म के पुण्य इस एक ठौर में जुट गये हैं।

कृष्ण सावधान! किस मोह में पड़ रहे हो तुम? जगत के. . धरती के इन सारे बन्धनों से छूटकर आत्मरूप अभिमन्यु आत्मलोक में पहुँच गया, जहाँ जाकर लौटना नहीं होता। वैर की अग्नि जहाँ नहीं जलती। चलो पुत्रवधू को धीरज दो। मेरु के हिलने पर उस पर खड़े वृक्ष और लता कब टिकेंगे? चिता बन रही है, तब तक मैं चारण का गीत देख लूं।

(थोड़ी देर सन्नाटा रहता है। सुमित्र किसी इन्द्रजाल में पड़ा-सा सब ओर देखता है, पर जैसे कुछ समझ नहीं पाता।)

युधिष्ठिर (प्रवेशकर) कौन है, सुमित्र! कितने घाव लगे हैं तुम्हें?

सुमित्र (हृदय पर हाथ रखकर) स्वामी का घाव इस हृदय में है देव! देह पर एक भी घाव नहीं। जब तक उनके हाथ में शस्त्र रहे, शत्रु के शस्त्र हमें छू न सके।

शस्त्र न रहने पर रथ के टूट जाने पर रथ का चक्र लेकर वे लड़ने लगे और मैं समुद्र की लहरों से फेंके हुये तृण की भाँति किनारे पर पडा रहा। यमराज की आँखे मेरी ओर न उठी। मृत्यु को भी मुझ अभागे की कामना न हुई। युद्ध भूमि के कोने कोने में भटकता रहा हूँ। चेत न रहा कौन हूँ कहाँ जा रहा हू। पितामह की बाण शय्या की ओर निकला, वहाँ उनके रक्षकों ने बैठाकर जल पिलाया।

युधिष्ठिर पितामह जान गये कि तुम अभिमन्यु के सारथी सुमित्र हो?

सुमित्र हाँ तात! उनके निकट जो न हो सका...वह पता नहीं कहाँ होगा। अपने बल से नहीं उन्होंने जो कुछ सुनाया उसी बल से यहाँ आ सका हूँ।

युधिष्ठिर हमारे लिए कुछ नहीं कहे वे?

सुमित्र कुमार के दाहकर्म से निवृत होने पर आप सबको उन्होंने बुलाया है, आज ही, जितनी जल्दी हो, स्वामी की माता के साथ, आपकी पुत्रवधू भी उनके अशीर्वाद को जायेंगी।

युधिष्ठिर अब तुम कहाँ जाओगे?

सुमित्र नही जानता। सपने मे कुमार जो आदेश देंगे मुझे वही करना होगा।

भीमसेन (नेपथ्य में) धर्मराज को सूचित करो सात्यकी! पुत्र की अन्त्येष्टि मे सम्मिलित हो!

युधिष्ठिर चलो मेरे साथ तुम भी वही।

सुमित्र — यह इतना इन आँखो से न देखू। दिन भर जो मैं देखता रहा। आपमें कोई न देख सका।

युधिष्ठिर — अच्छी बात आज से तुम मेरे शिविर में रहोगे।

सुमित्र — पितामह की बाणशय्या के निकट आज अंतिम बार आपके दर्शन कर लूंगा या आप जब कभी वहाँ जायेंगे.. मुझे यह लाभ मिलेगा। जब तक उनके कण्ठ में प्राण है मेरी जगह उनकी शय्या के निकट है। आगे की भगवान् जाने।

(दोनों का दोनों ओर से प्रस्थान। नेपथ्य मे मंत्रों की ध्वनि सुनाई पड़ती है। शंख और तूर्य बज उठते हैं। चारण गाने लगता है: )

( गीत )

अगम गति अमर की समर में मिली।
लोकपति के अधर की सुधा में बिखर,
इन्दिरा के करों की कला में निखर,
पार्थनन्दन ! तुम्हारी जो माला हिली।।
अगम गति अमर की समर में मिली।

(गीत के स्वर में वीरो का उल्लास गूँज उठता है)

— —— —

( रात्रि समरभूमि भयानक हो उठी है। वन्यजीवों की ध्वनि रह-रह कर सुन पड़ती है। एक ओर भीष्म की शरशैय्या जिस पर भीष्म खुली आँखों से आकाश देख रहे हैं। शरशैय्या के चारों ओर स्थान-स्थान पर अग्नि में काठ के कुन्दे जल रहे हैं, इसलिए कि वन्य जीव इधर न आयें और शरशैय्या बराबर प्रकाशित रहे। क्षितिज के ऊपर चन्द्रमा चढ़ चुका है जिसकी किरणों में समर भूमि कहीं श्वेत और कहीं पीली दीख पड़ती है। सुमित्र भीष्म के पैताने की ओर हट कर अग्नि के प्रकाश में खड़ा है।)

द्रोणाचार्य (प्रवेश कर) महात्मा देवव्रत को सूचना दो प्रहरी !

सुमित्र आप कौन हैं ?

द्रोणाचार्य (विस्मय में) तुम मुझे नहीं जानते ? अर्जुन और सुयोधन दोनों पक्ष के शस्त्र गुरु द्रोण का नाम तुमने नहीं सुना ?

सुमित्र (चौंककर) प्रणाम आचार्य ! अपराध क्षमा हो।

द्रोणाचार्य शतायु बनो। किस पक्ष के हो तुम ?

सुमित्र अब किसी पक्ष का नहीं आचार्य ! पक्ष के लिए भी कोई सहारा होता है और वही आज मिट गया।

द्रोणाचार्य तुम्हारी आकृति पर्वतीय-सी लग रही है। किस खण्ड के निवासी हो तुम यहाँ कैसे आये ?

सुमित्र (दुःख की हँसी) विराट जन हूँ मैं आचार्य ! राजकुमारी उत्तरा के यौतुक में इन्द्रप्रस्थ आया।

द्रोणाचार्य अरे ! आज दिन में तुम्हें देखा था अभिमन्यु के रथ पर। नरसिंह अभिमन्यु के सारथी तो तुम नहीं हो ?

सुमित्र जी कभी था पर अब कहाँ हूँ ?

द्रोणाचार्य अब समझा, दुःख के वेग में तुम मुझे पहचान न सके।

सुमित्र वह अधिकार मुझे नहीं है आचार्य ! स्वामी की मृत्यु में भी सेवक रो नहीं सकता। रोने वाले कुल और शील में समान होते हैं। दुख भी हमारे भीतर से बाहर नहीं आ सकता। भाग्य का खेल थी कि विराट पुत्री का रथ हांकनेवाला इस समर में उस योग्य माना गया ..जहाँ सारथी में भी रथी के गुणों की परीक्षा होती है।

द्रोणाचार्य तुम्हारी आकृति और भावमुद्रा से विषाद की लपटें निकल रही हैं। देख रहा हूँ जीवन की कामना तुम छोड़ चुके हो। इस लोक में तुम्हारे लिए अब कोई आकर्षण नहीं है। अर्जुन से तुम्हारी भेंट हुई थी ?

सुमित्र जी नहीं।

द्रोणाचार्य तुम्हारा कोई अपराध नहीं; रथ चलाने में तुम्हारा कौशल कृष्ण से होड़ ले रहा था। फिर भी नियति का विधान कैसे रुकता ? भय का कारण तुम्हारे लिए कोई नहीं है।

अर्जुन तुम्हें सान्त्वना देता और तुम्हें अब क्या करना है इसका आदेश भी .

सुमित्र यमराज का भय भी मुझे अब नहीं है; जो सारा दिन अपनी खेती काट कर भी मुझे छोड़ गया। जहाँ सब ओर शस्त्र बरस रहे थे मैं चाहता ही रहा। कोई गदा मेरे सिर पर गिरे, कोइ भल्ल मेरे हृदय के पार हो, कोई असि मेरे कण्ठ से लिपट जाय। यह कुछ नहीं हुआ! हाट उठ गई जाने वाले चले गये और मैं जहाँ था वही रह गया। पितामह जो मुझे भेजकर धर्मराज को सन्देश न देते तो मैं उधर जाता भी नहीं। कुमार का साथ छोड़कर जो मैं अभी इस धरती से बँधा हूं मेरा मन इसे अपराध मान रहा है। आप जो कहें।

द्रोणाचार्य (मन्द हँसी) इच्छा मात्र से कोई मर नहीं सकता पागल! मनुष्य के कर्मों की परिधि होती है; जिसमें उसे होता है घूमना। चलो तुम आगे पितामह को सूचित करो।

सुमित्र ध्यान टूटने पर वह नित्य की भाँति शंकर का नाम लेंगे और तब आप चलें। यही आदेश है मुझे।

द्रोणाचार्य कुछ लोगों के आने की आहट मिल रही है तुम्हें . हाँ लगता है धर्मराज आ रहे हैं। इधर से उन्हीं का मार्ग है।

सुमित्र जी .लगता है कि

द्रोणाचार्य अभी एक पुरुष का आकार . हाँ, दूसरा तो कोई नहीं दीखता. .धर्मराज!

अर्जुन मैं हूँ आचार्य ! (प्रवेश कर चरणों में झुकता है। फिर उनकी ओर देखते हुए) प्रसन्न होंगे आचार्य आप !

द्रोणाचार्य तुम जैसा समर्थ शिष्य पाकर मैं अपना भाग्य देवगुरु से कम नहीं मानता।

अर्जुन व्यूह की सफलता की ओर संकेत है मेरा।

द्रोणाचार्य हाँ...हाँ. यह समझ कर कहा मैंने। और जो तुम्हें यह भी सुनना हो कि मैं अभिमन्यु की मृत्यु से प्रसन्न हूँ ..तुम्हारा संकेत इस ओर हो तो पता होगा तुम्हें अभिमन्यु और लक्ष्मण एक साथ मरे। जिनके भीतर परस्पर उस अंत समय में भी क्रोध और घृणा के भाव नहीं आये। लक्ष्मण का पहले जाना अभिमन्यु के लिए असह्य हो उठा। उनका बन्धुभाव उस लोक में भी चलेगा। मनुष्य के भीतर देवत्त्व का दर्शन केवल सुख देता है पार्थ !

भीम शंकर.. शिव शंकर .

सुमित्र हाँ अब चलें। पितामह का ध्यान टूट गया।

अर्जुन सुमित्र ! अभी तुम जा रहे हो, शिविर में क्यों नहीं आये ? पुत्रवधू बारबार तुम्हें स्मरण कर रही है।

सुमित्र इसी डर से नहीं गया। राजपुत्री राजकुमार के युद्ध की बातें पूछेगी। कैसे कहूँगा, किन शब्दों में, आँख से देखी बात मुँह से कैसे निकलेगी ? एक-एक कर वे सभी दिन याद पड रहे हैं तात ! जब बालक था। राजकुमारी के क्रीडा कन्दुक के पीछे दौडना हिरण और मोर के साथ खेलना, फिर राजकुमारी का साथी और राजकुमार

के साथ उनके विवाह के कार्य और अन्त में वामन जैसे विराट् बन गये मुक्त हीन का उनका सखा और सारथी बन जाना। क्या-क्या चल रहा है इस मन मे ..

अर्जुन जाना तो पड़ेगा तुम्हे।

सुमित्र (हाथ जोड़कर) अब नहीं तात! मेरे मन की शान्ति पितामह की छाया मे इस वाणशैय्या के पास है। जब यह न रहेगी कोई न जानेगा सुमित्र कहाँ गया।

अर्जुन अरे! पुत्रवधू के निकट तुम न जाओगे, जन्म भर उनके संसर्ग मे रहकर?

सुमित्र मुझे देखकर उनका दुःख और बढेगा, अच्छा हो वे यही जानें कि मै भी साथ ही गया, उस लोक मे भी मै उनका सारथी हूँ।

द्रोणाचार्य पितामह के पास चलो भद्र! सुमित्र के प्राण भी अभिमन्यु के साथ चले गये तुम्हारे सामने उसका प्रेत खड़ा है।
(अर्जुन और द्रोणाचार्य वाणशैय्या की ओर बढ़ते हैं।)

सुमित्र (शैय्या के निकट पहुँचकर) आचार्य द्रोण और महात्मा अर्जुन आ गये।

भीष्म आसन धरो।

अर्जुन (पैरों के निकट झुककर) प्रणाम तात! तपपूत इस भूमि से बढ़कर दूसरा आसन मुझे नहीं चाहिए।

भीष्म जय जीव वत्स! आचार्य कहाँ है?

द्रोणाचार्य यहीं हूँ महात्मन्।

भीष्म सेवक का प्रणाम स्वीकार हो भूदेव!

द्रोणाचार्य समाधिस्थ शंकर को आशीर्वाद देने का अधिकार तब तो है मुझे ! आयु और शस्त्र दोनों मे पिता तुल्य होकर जो आप मुझे प्रणाम करें ।

भीष्म विष्णु ने भृगु को प्रणाम किया था गुरुदेव ! जन्म-जन्म के इस संस्कार को...

द्रोणाचार्य नरयोनि मे आपका यह पहला जन्म है ।

भीष्म (मन्द हँसी) यह भी आप ही कह सकेंगे, नरयोनि में जन्म लेकर एक जन्म से संतोष क्यों नही होता ? कमसे कम आप आसन पर बैठें ।

द्रोणाचार्य दोनों पक्ष आज निराहार रहकर भूमिशयन करेंगे यह तो आप जानते हैं ?

भीष्म निराहार रहकर कल युद्ध करेंगे ?

अर्जुन और क्या होगा तात !

भीष्म जयद्रथ के वध की प्रतिज्ञा तुम निराहार रहकर पूरी करोगे ?

अर्जुन जी...सिन्धुराज आहार करेगा और मैं.. आपके कुल के सभी व्यक्ति ऐसे ही रहेंगे ।

भीष्म जीवन भर मे आज एक कामना आई मन में दैव ने वह भी न होने दिया ।

द्रोणाचार्य सुन चुका हूँ अभिमन्यु और लक्ष्मण के अनुराग में आपकी आँखों से जल चला था । आज के युद्ध से वे दोनों विरत रहें, उन दोनों के शीश पर हाथ रखकर मेरे कण्ठ से आपने कहा था ।

अर्जुन (उद्वेग में) आचार्य ! क्या सुन रहा हूँ ?

द्रोणाचार्य संसप्तक युद्ध में तुम्हारे चले जाने के बाद दोनों संयोग से एक ही समय पितामह के पास आये और तभी यह बात हो गई।

अर्जुन नियति की गति यही थी तात !..

भीष्म कामना से सदैव मुक्त रहकर इस बन्धन में मैं आज पड़ा क्यों ? विधाता के किस धर्म की तुष्टि थी इसमें ?

द्रोणाचार्य यह सृष्टिचक्र मनुष्य की इच्छा से नहीं चल रहा है, इसका चलाने वाला दूसरा है आप जानते हैं। सूत्रधार जब जिस पुतली को जहाँ नचाये..

भीष्म विस्मय होगा आपको यह सुनकर। मेरे भीतर अब दूसरी कामना भी जाग उठी है।

द्रोणाचार्य कौन जाने उसका फल क्या होगा ?

अर्जुन हाँ तात ! उसे सुनने का पुण्य तो कानों को मिले फल तो अपने वश में है नहीं।

भीष्म धर्मराज और सुयोधन दोनों आ जायँ। हो सकता है सुयोधन मेरी बात न मानें, धर्मराज से तुमसे भी ऐसा होना कठिन नहीं है।

अर्जुन कौन नहीं मानेगा आपकी बात तात ! तब यह धरती रसातल में जा लगेगी।

भीष्म आशीर्वाद दें आचार्य ! मेरी यह एक कामना पूरी हो जाय।

द्रोणाचार्य इस बार मनोरथ आपके पीछे चलेगा, आकाश के ग्रह

पिण्ड आपके आदेश का उल्लंघन इस बार न करेंगे और कुरुराज आ भी गये।

सुयोधन — प्रणाम तात! आचार्य आप को भी।

भीष्म — तुम्हारा यश बढ़े वत्स! दूसरे किसी आशीर्वाद की इच्छा तो अब तुम्हें होगी नहीं।

द्रोणाचार्य — मैं तो यह आशीर्वाद भी नहीं देता। अभिमन्यु के अन्तकाल में सुयोधन का जो यशस्वी रूप मैंने अपनी आँख से देखा उसके आगे यश की कामना भी न होगी।

भीष्म — क्या कह रहे हैं?

द्रोणाचार्य — जिस समय अभिमन्यु धरती पर गिर पड़ा आततायी गदा लेकर मारने दौड़ा उस समय ये दौड़ पड़े थे अभिमन्यु की रक्षा में। इनके पहुँचने के पहले ही गदा का प्रहार मस्तक पर हो चुका था। लक्ष्मण का निधन भूलकर अभिमन्यु का शीश ये अपने अंक में लेकर बैठ गये। वह दृश्य देवताओं के देखने योग्य था पितामह! जिस किसी ने वह दृश्य अपनी आँख से देखा क्षण भर को देवता बन गया।

भीष्म — तब तो मेरी कामना पूरी हो गई आचार्य!

अर्जुन — (सुयोधन को लक्ष्य कर) भाई ने अपने शत्रु के पुत्र पर स्नेह दिखाकर

सुयोधन — अब हम लोग शत्रु नहीं हैं किरीटी! अभिमन्यु और लक्ष्मण ने अपनी बलि देकर शत्रुता की उस अग्नि को बुझा दिया है। हमें तो अब केवल लोक के रंगमंच पर अपने कर्म का अभिनय करना है। युद्ध नहीं रुकेगा।

भाग्यवान् वीरगति लेंगे और अभागों को मिलेगा इस धरती का राज्य।

अर्जुन साधु ! साधु ! युद्ध रोकने की बात न कहेंगे पितामह ?

भीष्म नहीं वत्स ! तुम लोग कल शस्त्रों से इस समूची सृष्टि को मिटा दो और हो सके तो तुम भी मिट जाओ। दोनों राजकुमारों की मृत्यु के बाद युद्ध रोकने की बात कहना ऐसा अधर्म होगा जो हिमालय से भारी और समुद्र से अगाध है। मेरी कामना दूसरी ही है और वह अब पूरी भी हो चुकी।

द्रोणाचार्य विलम्ब न करें महात्मन् ! अब कह दें। आपकी कामना का अनादर सुयोधन और अर्जुन से न होगा।

अर्जुन, सुयोधन कभी नहीं।

भीष्म तो फिर कहूं मैं. .

अर्जुन, सुयोधन हाँ...

भीष्म भगवान् की कृपा से कुरुवंश की लीक नहीं मिटी युद्ध का फल जो हो। मेरे सामने कुल के भविष्य में सभी आशावान् हों।

सुयोधन किस तरह तात ! अभिमन्यु और लक्ष्मण के साथ ही वह आशा मिट गई। लक्ष्मण का विवाह नहीं हुआ था। किरीटी की पुत्रवधू अब विधवा है।

भीष्म कुल के मंगल की बात कह दो अर्जुन अब . कुरुराज नहीं जानते।

सुयोधन ऐं. तो ..

अर्जुन (सुयोधन से) अभिमन्यु अपना प्रतिनिधि छोड गया है भाई ! पुत्रवधू उसका अंश ढो रही है ।

सुयोधन सुखी हूँ मैं यह सुनकर भद्र ! कुलनाश के पाप से हम सब बच गये ।

भीष्म सुन लें आचार्य ! अब मेरी कामना । अभिमन्यु और लक्ष्मण को जिन देवियों ने जन्म दिया उन दोनों के बीच मे राजवधू उत्तर बैठे . दोनों के हाथ उसके शीश पर रहें.. मन और चित्त से दोनों कुल के भावी मंगल की कामना महादेव से करें !

सुयोधन (उत्साह में) जय हो तात ! धधकती हुई वनस्थली के ऊपर जैसे मेघ अमृत की वर्षा करें.. आपकी यह कामना वैसी ही है उससे भी मोहक और महान । आपकी बाणशैय्या के निकट देवियाँ नहीं आ सकतीं (सामने की ओर हाथ उठाकर) राजमहिषी आदेश के लिये आँचल पसारे वहाँ खडी हैं ।

भीष्म शेष कार्य अब आपसे होगा आचार्य !

द्रोणाचार्य शस्त्रजीवी ब्राह्मण इस कार्य के अनुकूल होगा ?

भीष्म शस्त्र और शास्त्र बराबर लोकधर्म की दोनों बाँहें या दो आँखें रहे हैं । शस्त्र से शास्त्र की रक्षा और शास्त्र से शस्त्र की गति बराबर बनी रही है । रात्रि का अंधकार इस आशा में मिटता रहा है आचार्य ! कि कल फिर सूर्य का उदय होगा.. अब आप जायें, तुम दोनों

भी जाओ वत्स ! इस कार्य का सम्पादन करो । तुम्हारी परम्परा बनी रहे । यह कामना तुम सब की हो । कुल-देव इसमें सहायक हों । तुम भी जाओ सुमित्र ! जिससे मेरा मन अपनी कामना के रंग में रंग उठे ।

(एक साथ सबका प्रस्थान)

अर्जुन (चलते चलते) राजमहिषी की सेवा मे मैं चलूं आचार्य । भाई अनुजपत्नी और पुत्रवधू को लेकर आयें ।

सुयोधन ऐसा क्यों ? वहीं चलें । कुल की लक्ष्मी के स्वागत में ।

अर्जुन ना यह नहीं होगा आचार्य । राजरानी पद और आयु दोनों में बडी हैं जहाँ हैं वही रहेगी ।

द्रोणाचार्य (सुयोधन से) मान जाओ यह मनुहार भद्र ! यही जो पहले हुआ होता...

अर्जुन तब भी मृत्यु किसी दिन आती । भूमण्डल के वीर तब रक्त से इस भूमि का इतिहास न लिखते । कोई नही जानता उन्हें ।

सुयोधन इस समय मै जिस सम्मोहन मे हूँ.. कुछ भी कर सकता हू पार्थ !...चाहो तो प्राण भी माँग लो । केवल यह युद्ध होगा । यह न रुकेगा । चाहे इसकी कामना स्वयं पितामह करे ।

अर्जुन अब किस लिये भाई ? अब तो हमे केवल समर के लिये कर्म करना है । इस दारुण युद्ध का फल यही हो कि इस भूमि मे जो जन्म लें जीवन के मोह में फँस कर कायर न बनें । नही तो एक साथ जितने वीर यहाँ मरे और मरेंगे

उन सबका धर्म डूब जायेगा। भारत का पवित्रतम कर्म बराबर...

द्रोणाचार्य (मन्द हँसी) महाभारत रहे क्यों भद्र!

अर्जुन हाँ आचार्य! इस भूमि मे जिनका जन्म हो, हमारी जाति जब तक इस भूमि से बँधी रहे गंगा, यमुना, सिन्धु, सरस्वती की धारा जब तक इस भूमि पर चलती रहे, हिमालय का शीश जब तक ऊपर रहे यह युद्ध लोक चेतना का सबसे प्रधान वाहक बने।

द्रोणाचार्य यही होगा परन्तप! हमारी भावी परम्परा को यह युद्ध सदैव बल देता रहेगा।

अर्जुन सुमित्र! तुम भाई के साथ जाकर माता और बहन को यही ले आओ। (सामने हाथ उठाकर संकेत करता है।) राजरानी को मैं चल कर सब कह देता हूँ।

द्रोणाचार्य मै किस ओर भद्र!

अर्जुन जिधर आप अब तक रहे हैं। भाई से अलग आप अब एक ही दिन होंगे।

द्रोणाचार्य वह दिन भी निकट है।

अर्जुन कल जयद्रथ से मुक्त होकर परसों आप से भी मुक्त हो सकूँ आचार्य! यही आशीर्वाद दे सके तो दें।

द्रोणाचार्य तथास्तु! और कुछ

अर्जुन अब कुछ नहीं।

सुयोधन आचार्य की अवधि बस परसों तक है?

द्रोणाचार्य तुम जानते हो अर्जुन पर मेरा स्नेह तुम सबसे अधिक है।

अर्जुन को शिष्य रूप से पाकर मेरा जो गौरव बढ़ा जिसका प्रतिद्वन्द्वी कहीं कोई न रहे, इसीलिए तो एकलव्य का अँगूठा मैंने गुरुदक्षिणा में ले लिया तो फिर ऐसा यशस्वी शिष्य आशीर्वाद में जब मेरा प्राण माँग रहा है तो मैं उसे नहीं कैसे कहूं ? जब तक मेरे हाथ में धनुष रहेगा...

अर्जुन जानता हूं आचार्य ! तब तक यह सम्भव न होगा।

द्रोणाचार्य जब चाहना कह देना मैं धनुप रख दूंगा।

अर्जुन गुरुपुत्र के न रहने पर तो धनुप रख देने का संकल्प आप का पहले से है।

द्रोणाचार्य (दोनों कानों पर हाथ रखकर) यह बात पहले से न कहो भद्र ! पुत्र का शोक उसके रहते न दो मुझे।

अर्जुन आप जानते हैं मेरे वश का कुछ नहीं, होनहार जो करे कराये। जिस अग्नि की कल्पना आपके लिए असह्य हो रही है वह मेरे भीतर जल रही है। मन की इस दशा में जो कुछ कह गया उसे आप भूल जायें।

सुयोधन आचार्य के साथ समाधान का समय अभी है बन्धु ! कल रणभूमि में तुम्हारी इनसे फिर भेंट होगी। इस समय पितामह की कामना पूरी करनी है तुम्हें।

(द्रोणाचार्य, सुयोधन और सुमित्र आगे की ओर बढते हैं जहाँ सुमित्र पहले खड़ा था। अर्जुन दाया ओर निकल जाता है। युधिष्ठिर का प्रवेश

युधिष्ठिर प्रणाम आचार्य ! (सुयोधन की ओर से मुंह फेर लेते हैं)

द्रोणाचार्य इस समय तुम दोनों में वैर नहीं है भद्र! तुम नहीं जानते पितामह ने अभी क्या कर दिया?

युधिष्ठिर (उत्सुक होकर) अब कोई क्या करेगा आचार्य! अब तो हम सब प्रलय के केन्द्र में खड़े हैं।

सुयोधन प्रलय के बाद सृष्टि और फिर प्रलय, जगत् का यही क्रम है धर्मराज! विलम्ब न करें आचार्य! क्या करना है धर्मराज से कह दें।

द्रोणाचार्य सुनो धर्मराज! चित्त को शान्त कर सुनो अर्जुन राजमहिषि भानुमती के पास गये हैं। तुम्हारी पुत्रवधू और अनुजपत्नी को भी वहाँ जाना है।

युधिष्ठिर पितामह की शैय्या के पास?

द्रोणाचार्य (एक ओर हाथ उठा कर) नहीं नहीं.. शैय्या के निकट नारी कैसे जायेगी? राजमहिषी वहाँ है किरीटी के साथ।

युधिष्ठिर किरीटी के साथ?

द्रोणाचार्य विस्मय न करो भद्र! पितामह की कामना है अभिमन्यु और लक्ष्मण को जिन देवियों ने जन्म दिया उन दोनों के बीच में तुम्हारी पुत्रवधू बैठे। दोनों उसके सिर पर हाथ धरकर भगवान् शंकर से उसके पुत्र के मंगल की याचना करें।

युधिष्ठिर (सुयोधन की ओर देखकर) भला वे मानेंगी यह?

सुयोधन मैं मान चुका हूं धर्मराज! हमारे कुल का सहारा अब दूसरा क्या है? कहाँ हैं वे लोग?

युधिष्ठिर (पीछे की ओर हाथ उठाकर) भीमसेन के साथ वहीं

रोक दिया। पितामह के चारो ओर जो अग्निमण्डल है उसके भीतर बिना उनकी आज्ञा के...

सुयोधन चलो सुमित्र! देवियों को साथ लेकर वहाँ पहुँचो। आचार्य के साथ मै भी आ रहा हू। धर्मराज न हो तो पितामह के पास चलें। (सुमित्र का प्रस्थान)

युधिष्ठिर पितामह ने कुल देवियो को तब इसीलिए बुलाया था। कुल का भविष्य मंगलमय हो यह बात मेरी समझ मे तब न आई। बाणशैय्या पर भी कुल के भविष्य की चिन्ता उनके भीतर से नही गई थी। मुझे जाना पडेगा वहाँ अब। भीमसेन कही सुमित्र की बात न माने।

सुयोधन अर्जुन ने यह भार मेरे कन्धो पर डाल दिया है धर्मराज! अन्त तक मुझे ही ढोना है उसे। भीम के हाथ मे गदा तो न होगी?

युधिष्ठिर पितामह के पास हमलोगो की भेंट नित्य रात को होती रही है। यहाँ शस्त्र लेकर कोई नही आता।

सुयोधन कोई बात नही जिस फल के लिए यह युद्ध छिडा वह जितना जल्दी मिले।

(सुयोधन का प्रस्थान)

सुयोधन (नेपथ्य में) यहाँ पहुँचकर आपको मै बुला लूगा आचार्य!

द्रोणाचार्य अच्छा भद्र!

युधिष्ठिर तो क्या पितामह आगे युद्ध रोकने की बात भी कहेंगे?

द्रोणाचार्य नहीं, युद्ध अब और दारुण होगा। कुल की रक्षा हो गई, पितामह का सन्तोष इसी में है।

युधिष्ठिर मै तो सोच नही पाता था आचार्य! देवियाँ किसलिए

बुलाई गई हैं। एक बार मन में बिजली-सी चमक गई भास हुआ कि कुल के मंगल के लिए कदाचित वे अपना व्रत तोड़कर पुत्रवधू को आशीर्वाद देंगे।

द्रोणाचार्य वही बात तो हुई। सात्विक वृत्ति में जो होने को होता है पहले से ही भासित हो उठता है।

युधिष्ठिर अभिमन्यु के अंत का आभास तब मुझे क्यों नहीं हुआ?

द्रोणाचार्य अवश्य हुआ होगा.. रोकने से रुके तो होनहार क्या? दैव की इस विचित्र गति पर मनुष्य का वश नहीं है भद्र! पर्वत-शिखर से गिरकर, समुद्र के अतल में डूब कर लोग बच गये हैं, यह भी सुना है कि फूल सूंघने में लोग मर भी गये हैं। दैव से रक्षित सब ओर से अरक्षित होकर भी बच जाता है, और दैव जिसे नहीं बचाता उसकी रक्षा के सारे कार्य असफल होते हैं।

युधिष्ठिर सुयोधन तो आज पहचाने नहीं जाते आचार्य! क्या हो गया इन्हें?

द्रोणाचार्य अपनी आँखों जगत् का संहार जो एक बार देख लेगा वह फिर वही नहीं रहेगा जो पहले था। विश्वास नहीं होगा तुम्हें लक्ष्मण के मारे जाने पर भी अभिमन्यु को बचाने सुयोधन दौड़े थे तब तक उस पापी की गदा मस्तक पर पड़ गई फिर भी अभिमन्यु का सिर अपनी गोद में लेकर बैठ गये थे। कर्ण को मति-भ्रम सा हो गया, मुझे भी अपनी आँखों पर विश्वास नहीं होता था।

युधिष्ठिर यह सुनकर तो मन होता है आचार्य! धरती फट जाती

और मैं उसी में समा जाता। इस सारे संहार के मूल में एक नारी का अभिमान है।

द्रोणाचार्य पुरुष के सबसे प्रधान कर्म समर के मूल में बराबर नारी रही है और जब तक सृष्टि चलेगी और जब कभी युद्ध होगा कारण नारी रहेगी।

सुयोधन (नेपथ्य में) अब चलें आचार्य !

द्रोणाचार्य आया भद्र !

(द्रोणाचार्य का प्रस्थान। भीमसेन का प्रवेश)

भीमसेन यह क्या हो रहा है तात !

युधिष्ठिर देखते चलो जो हम पहले से जानते तब तो कुछ होता ही नहीं। जब हमें सब जान लेने की शक्ति मिल जायगी तब यह विश्व प्रपंच मिट गया रहेगा।

(भीमसेन सन्देह में सब ओर देखता है।)

युधिष्ठिर किस चिन्ता में पड़ गये। चलो पितामह के पास तुम्हारा समाधान वहाँ होगा।

भीमसेन नहीं तात...जो कहा वह.. भला उसका विश्वास...

युधिष्ठिर तुम्हारा विश्वास उसने पहले किया, न करना था उसका विश्वास...

भीमसेन उसे देखते ही मुझे क्रोध न चढ़ा। मुद्रा और आकृति में, वाणी और दृष्टि में कौन-सा सम्मोहन भर गया था कि मैं रोक न सका।

युधिष्ठिर तुम्हारे प्रति उसके भीतर कोई अपकार नहीं था, होता तो तुम देख लेते।

भीमसेन तब तो मैं अपने जीवन के सबसे बड़े विस्मय को अपनी आँखों देख लूँ।

युधिष्ठिर परमात्मा का आसन हिलता है भीमसेन ! यह न भूलना। (भीमसेन का प्रस्थान। युधिष्ठिर बाणशैय्या के निकट आ जाते हैं।)

भीष्म धर्मराज !

युधिष्ठिर हाँ तात !

भीष्म गोपाल नहीं आये ?

युधिष्ठिर उनके लिए आदेश तो नहीं था।

भीष्म बिना किसी शस्त्र के इस युद्ध के अकेले संचालक किसी दिन इस सृष्टि के संचालक कहे जायेंगे धर्मराज ! जब कभी वे कृपा कर यहाँ आ जाते हैं बाणों की पीड़ा मिट जाती है जैसे शिव के ध्यान में कभी-कभी उनकी मूर्ति देखने लगता हूँ।

युधिष्ठिर रोमांच हो आया मुझे पितामह आपकी बात सुनकर।

भीष्म देवियाँ परस्पर मिल चुकीं धर्मराज ?

युधिष्ठिर (एक ओर हाथ उठाकर) हाँ तात ! भानुमती और सुभद्रा के बीच में पुत्रवधू बैठी है। यह दृश्य वासुदेव अपनी आँखों देखते तो...

कृष्ण (प्रवेश कर) बिना बुलाये मैं आ गया पितामह ! यही देखने कि पितामह आज क्या इन्द्रजाल रचेंगे।

भीष्म अपार्थिव शरीर से मैं बराबर तुम्हें अपने पास पाता हूँ,

जानता हूँ गोपाल मुझे भूलेंगे नहीं, फिर उनके पास संदेश क्या भेजूँ?

कृष्ण अत्यधिक आदर देकर संकोच में न डालें मुझे। आपके सामने जो स्थान धर्मराज का है, सुयोधन का है वही मेरा भी है।

भीष्म अहो भाग्य गोपाल! बलि के नारायण बनकर जो आज भोर में ही मुझे दर्शन मिला।

युधिष्ठिर वासुदेव भोर में ही आये?

भीष्म हाँ भद्र! और यह जानते थे कि आज के युद्ध में क्या होने वाला है।

कृष्ण धर्मराज को मोह में न डालें तात!

भीष्म जगत् का मोह मिटाने के लिए जब तुम्हारा अवतार हो गया तो फिर धर्मराज के मोह की चिन्ता मुझे नहीं है। सर्प की औषधि मुँह में लेकर चलनेवाले पर सर्प का विष नहीं चढ़ता।

कृष्ण भानुमती और सुभद्रा दोनों का संताप उत्तरा के माध्यम से मिट रहा है, शेष रात्रि अब उतनी दारुण नहीं रहेगी।

भीष्म हम सबका संताप है यह वासुदेव! सारे लोक का, धरती और आकाश का संताप है यह जिसके मिटाने की कामना मेरे भीतर वैसे ही जाग उठी जैसे घने काले मेघ में बिजली जाग उठती है। दुःख से मुक्ति ही तो स्वर्ग है।

कृष्ण तो फिर यह जगत् क्या है?

भीष्म (मन्द हँसी) ह-ह ह-काल के पाश में पड़े

हुए की परीक्षा नहीं लेते, इसकी भी आयु होती है वासुदेव !

कृष्ण — बाल ब्रह्मचारी पितामह भीष्म काल के पाश से सदैव परे हैं, काल की इच्छा पर जो शासन करते हैं और इसी लिए जो इच्छा-मृत्यु हैं उनके श्रीमुख से मैं इसका उत्तर चाहता हूँ।

भीष्म — यह सब तो तुम्हारा अनुग्रह है भगवान्! मेरे लिये यह संसार पार करने का सेतुमात्र है . इस पार से उस पार .. बस इतना ही। इसके ऊपर भवन बनाकर रहना मैं जीव का अज्ञान मानता हूँ।

कृष्ण — सुन रहे हो धर्मराज ! अब तो तुम्हें अभिमन्यु का शोक न होगा।

युधिष्ठिर — जगत के भय और शोक को जिस दिन ज्ञान सब ओर से घेर लेगा तब यह सेतु भी न रहेगा और न किसी को पार करना होगा।

भीष्म — धन्य हो भद्र ! तुम्हारी वाणी इस समय ठीक तुम्हारे अनुरूप है।

कृष्ण — समुद्र अपना धन अपने भीतर छिपाये रहता है वही दशा धर्मराज की भी है पितामह ! डरते हैं कहीं कोई ले ले या...

युधिष्ठिर — फिर द्यूत में न हार जायँ यही कह रहे हो ?

भीष्म — प्रकृति में ये कर्म बराबर होते रहेंगे भद्र ! द्यूत भी और युद्ध भी.. इस बार उसके माध्यम तुम रहे, दूसरी बार

दूसरे लोग। कहीं भूल तो नहीं रहा हूं वासुदेव ?

कृष्ण लोक जीवन को अग्रसर करने के लिए, युद्ध और द्यूत चलते ही रहेंगे। प्रकृति के सबसे शुद्ध कार्य का नाम युद्ध है और उसकी विकृति द्यूत का रूप लेती है। कुरु-भूमि के इस समर में लोक जीवन अपनी विकृति से छूट-कर स्वाभाविक रूप में खड़ा होगा।

भीष्म और स्पष्ट करो भद्र !

कृष्ण यह युद्ध उस द्यूत का परिणाम है तात, जिसमें धर्मराज अनायास कुछ लोगों के जाल में फँसकर अपना सब कुछ हार गये थे, जब-जब ऐसी दशा आयेगी लोगों का धन और मान इस रूप में हरण किया जायेगा, युद्ध होगा। लोक जीवन को तब निसर्गजात सात्विक आधार मिलेगा।

भीष्म कहने का अर्थ है कि युद्ध होते ही रहेंगे ? मानव अपनी हिंसा वृत्ति पर अधिकार नहीं करेगा ?

कृष्ण पुराकाल के सभी राजर्षि, परशुराम और श्रीराम तब तो हिंसक कहे जायेंगे पितामह ! अब आप मेरी परीक्षा ले रहे हैं। समर में हिंसा की नहीं मनुष्य के...मानव के सबसे महान धर्म और तप की साधना होती है। हाँ मनुष्य का स्वभाव जब प्रकृति बदल देगी तब युद्ध न होगा पर तब प्रकृति अपने भी बदल जायेगी।

भीष्म बस.....बस.....यही सुनना चाहता था मैं और अब मुझे संतोष हो गया।

(ऊपर आकाश में मेघ खण्ड आ जाता है जिससे बाणशैय्या के समीप की धरती युधिष्ठिर और कृष्ण के साथ लुप्त हो जाती है। भानुमती और सुभद्रा के बीच में बैठी उत्तरा पर चन्द्रमा की किरणें पड रही हैं। सुमित्र एक ओर खड़ा होकर आकाश देख रहा है। भानुमती और सुभद्रा के हाथ उत्तरा के सिर पर हैं। देह की सुधि दोनों भूल चुकी हैं।)

उत्तरा — *सब ओर के दिग्दाह के बीच में अकेली प्रिय से बिछुड़ी हरिणी सी ..*

भानुमती — *बालहरिण अपने पैरो जब खडा होगा पुत्री! यह धरती फिर सब ओर से हरी-भरी रहेगी। जन्म-जन्म के जो पुण्य अभी भी बचे हों उनका फल तुम्हें मिले वधू! हमारे भावी कुल की आदि मा का पद तुम लो।*

सुभद्रा — *मुझे कुछ नहीं कहना है बहन! इस समय मैं तुममें लय हो चुकी हू।*

भानुमती — *वधू के पास आओ सुमित्र! हम दोनो बहिनें यहाँ से हटकर अपने अभाग्य से हिमालय को हिला दें।* (सुभद्रा से) *उठो बहन! कौन जाने अब फिर भेंट न हो।* (सुभद्रा और भानुमती का प्रस्थान।)

उत्तरा — *युद्ध के बाद तुम भी मुझे छोड गये सुमित्र!*

सुमित्र — *इस डर से कि जो कुछ इन आँखों ने देखा उन्हें कैसे कह पाऊँगा?*

उत्तरा — *और जो मैं अब उस विषय की एक बात न पूछू तो ..*

सुमित्र — *तब मैं आऊँगा बहन! जितने दिन अभी बचे हैं*

तुम्हारी छाया में फिर बीतेंगे। पितामह की बाणशय्या जब न रहेगी, विषाद की जब यह रात बीतेगी तुम्हारे बाल अरुण के रथ का तब मैं अश्व बनूंगा।

( उत्तरा भाव मुग्ध सी उसकी ओर देखने लगती है )

(पर्दा गिरता है):